प्रकाशक

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई

पहली बार—सन् १९३९ ई०

मूल्य

साधारण जिल्द—२)
सुनहरी जिल्द—२॥)

मुद्रक—पी० टोपा, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

मुड कर देखने की प्रवृत्ति सुख-दु ख की भावना से परे है। स्मृतियाँ मुझे केवल "सुख पूर्ण दिनो के भग्नावशेष" नहीं समझ पडती। वे हमें लीन करती हैं, हमारा मर्म स्पर्श करती हैं, बस, हम इतना ही कह सकते हैं।

जैसे अपने व्यक्तिगत अतीत जीवन की मधुर स्मृति मनुष्य में होती है वैसे ही समष्टि रूप में अतीत नर-जीवन की भी एक प्रकार की स्मृत्याभास कल्पना होती है जो इतिहास के सकेत पर जगती है। इसकी मार्मिकता भी निज के अतीत जीवन की स्मृति की मार्मिकता के समान ही होती है। नर-जीवन की चिरकाल से चली आती हुई अखंड परम्परा के साथ तादात्म्य की यह भावना आत्मा के शुद्ध स्वरूप की नित्यता और असीमता का आभास देती है। यह स्मृति-स्वरूपा कल्पना कभी कभी प्रत्यभिज्ञान का भी रूप धारण करती है। जैसे प्रसंग उठने पर इतिहास द्वारा ज्ञात किसी घटना के व्योरो को कहीं बैठे बैठे हम मन में लाया करते है, वैसे ही किसी इतिहास-प्रसिद्ध स्थल पर पहुँचने पर हमारी कल्पना या मूर्त्त भावना चट उस स्थल पर की किसी मार्मिक घटना के अथवा उससे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियो के बीच हमें पहुँचा देती है जहाँ से फिर हम वर्त्तमान की ओर लौट कर कहने लगते हैं—'यह वही स्थल है जो कभी सजावट से जगमगाता था, जहाँ अमुक सम्राट् सभासदो के बीच सिंहासन पर विराजते थे; यह वही द्वार है जहाँ अमुक राजपूत वीर अपूर्व पराक्रम के साथ लडा था' इत्यादि। इस प्रकार हम उस काल से लेकर इस काल तक अपनी सत्ता के आरोप का अनुभव करते हैं।

अतीत की कल्पना स्मृति की सी सजीवता प्राप्त करके अवसर पा कर प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप धारण कर सकती है जिसका आधार या तो आप्त शब्द (इतिहास) अथवा अनुमान होता है। अतीत की यह स्मृति-स्वरूपा कल्पना कितनी मधुर, कितनी मार्मिक और कितनी लीन करनेवाली होती है, सहृदयो से न छिपा है, न छिपाते बनता है। मनुष्य की अन्त प्रकृति पर इसका प्रबल प्रभाव स्पष्ट है। हृदय रखनेवाले इसका प्रभाव, इसकी सजीवता अस्वीकृत नहीं कर सकते। इस प्रभाव का, इस सजीवता का, मूल है सत्य। सत्य से अनुप्राणित होने के कारण ही कल्पना स्मृति और प्रत्यभिज्ञान का सा सजीव

पर आश्रित नहीं वह हल्के मनोरजन की वस्तु है ; उसका प्रभाव केवल वेल-बूटे या नक्काशी का-सा होता है, मार्मिक नहीं।

हमारा भारतीय इतिहास न जाने कितने मार्मिक वृत्तो से भरा पड़ा है। मै बहुत दिनो से इस आसरे में था कि सच्ची ऐतिहासिक कल्पनावाले प्रतिभा-सम्पन्न कवि और लेखक हमारे वर्तमान हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में प्रकट हो। किसी काल की सच्ची ऐतिहासिक कल्पना प्राप्त करने के लिए उस काल से सम्बन्ध रखनेवाली सारी उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की छान-बीन अपेक्षित होती है। ऐसी छान-बीन कोरे विद्वान् तो करते ही रहते है पर उसकी सहायता से किसी काल का जीता-जागता सच्चा चित्र वे ही खडा कर सकते है जिनकी प्रतिभा काल का मोटा परदा पार करके अतीत का एक-एक ब्योरा झलका देती है। आसरा देखते देखते स्वर्गीय 'प्रसाद' जी के नाटक सामने आए जिनमें प्राचीन भारत की बहुत-कुछ मधुर झलक मिली। उनके देहावसान के कुछ दिन पूर्व मैंने उपन्यासो के रूप में भी ऐसी झांकी दिखाने का अनुरोध उनसे किया था जो उनके मन में बैठ भी गया था।

नाटको के रूप में ऐतिहासिक कल्पना का अतीत-प्रदर्शक विधान देखने पर भावात्मक प्रबन्धो के रूप में स्मृति-स्वरूपा या प्रत्यभिज्ञान-स्वरूपा कल्पना का प्रवर्त्तन देखने की लालसा, जो पहले से मन में लिपटी चली आती थी प्रबल हो उठी। किधर से यह लालसा पूरी होगी, यह देख ही रहा था कि, 'ताजमहल' और 'एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ' नामक दो गद्य-प्रबन्ध देखने में आए। दोनो के लेखक थे महाराजकुमार श्री रघुवीरसिंहजी। आशा ने एक आधार पाया। उक्त दोनो प्रबन्धो में जिस प्रतिभा के दर्शन हुए उसके स्वरूप को समझने का प्रयत्न मै करने लगा। पहली बात मुझे यह दिखाई पडी कि महाराजकुमार की दृष्टि उस कालखड के भीतर रमी है जो भारतीय इतिहास में 'मध्यकाल' कहलाता है। आपकी कल्पना और भावना को जगाने वाले उस काल के कुछ स्मारक चिह्न है, यह देख कर इसका भी आभास मिला कि आप की कल्पना किस ढग की है। जान पडा कि वह स्मृति-स्वरूपा है, जिसकी मार्मिकता के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। महाराजकुमार ऐसे इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् के हृदय में ऐसा भाव-सागर लहराते देख मै

तृप्त हो गया। विद्वत्ता और भावुकता का ऐसा योग ससार में अत्यन्त विरल है।

प्रस्तुत सग्रह का नाम है "शेष स्मृतियाँ"। इसमें महाराजकुमार के पाँच भावात्मक निबन्ध हैं जिनके लक्ष्य हैं—ताजमहल, फतहपुर सीकरी, आगरे का किला, लाहौर की तीन (जहाँगीर, नूरजहाँ और अनारकली की) कब्रें और दिल्ली का किला। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पाँचो स्थान जिस प्रकार मुगल-सम्राटो के ऐश्वर्य, विभूति, प्रताप, आमोद-प्रमोद और भोग-विलास के स्मारक हैं उसी प्रकार उनके अवसाद, विषाद, नैराश्य और घोर पतन के। मनुष्य की ऐश्वर्य, विभूति, सुख और सौंदर्य की वासना अभिव्यक्त होकर जगत् के किसी छोटे या बडे खड को अपने रग में रग कर मानुषी सजीवता प्रदान करती है। देखते देखते काल उस वासना के आश्रय मनुष्यो को हटाकर किनारे कर देता है। धीरे धीरे ऐश्वर्य-विभूति का वह रग भी मिटता जाता है। जो-कुछ शेष रह जाता है वह बहुत दिनो तक ईंट-पत्थर की भाषा में एक पुरानी कहानी कहता रहता है। ससार का पथिक मनुष्य उसे अपनी कहानी समझ कर सुनता है क्योकि उसके भीतर झलकता है जीवन का नित्य और प्रकृत स्वरूप।

ये स्मारक न जाने कितनी बातें अपने पेट में लिए कहीं खडे कहीं बैठे कहीं पडे हैं। सीकरी का बुलन्द दरवाजा खडा है। महाराजकुमार उन्हें सामने लाते हैं और रोकते हैं—

'यदि आज यह दरवाजा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कुछ व्यक्तियो के स्मारक-चिह्न तो उनके पीछे उनके हुए [illegible] का प्रतीक बन जाते हैं और उसी प्रकार दुःख या प्रेम के आलम्बन हो जाते हैं जिस प्रकार अपने जीवन-काल में वे व्यक्ति थे—

'[illegible]

कर या उन्हें चूम कर समझ लेता है कि वह उस अन्तर्हित आत्मा के प्रति अपने भाव प्रकट कर रहा है। उस मृत व्यक्ति के पाप या पुण्य का भार उठाते हैं उसके जीवन से सम्बद्ध ईंट और पत्थर।"

किसी अतीत जीवन के ये स्मारक या तो यों ही, शायद काल की कृपा से, बने रह जाते हैं अथवा जान-बूझ कर छोड़े जाते हैं। जान-बूझ कर कुछ स्मारक छोड़ जाने की कामना भी मनुष्य की प्रकृति के अन्तर्गत है। अपनी सत्ता के लोप की भावना मनुष्य को असह्य है। अपनी भौतिक सत्ता तो वह बनाए नहीं रख सकता; अत. वह चाहता है कि उस सत्ता की स्मृति ही किसी जन-समूह के बीच बनी रहे। बाह्य जगत् में नहीं तो अन्तर्जगत् के किसी खंड में ही वह उसे बनाए रखना चाहता है। इसे हम अमरत्व की आकांक्षा या आत्मा के नित्यत्व का इच्छात्मक आभास कह सकते हैं—

"भविष्य में आने वाले अपने अन्त के तथा उसके अनन्तर अपने व्यक्तित्व के ही नहीं, अपने सर्वस्व के, विनष्ट होने के विचार मात्र से ही मनुष्य का सारा शरीर सिहर उठता है। मनुष्य इस भौतिक संसार में अपनी स्मृतियाँ—अमिट स्मृतियाँ—छोड़ जाने को विकल हो उठते हैं।"

अपनी स्मृति बनाए रखने के लिए कुछ मनस्वी कला का सहारा लेते हैं और उसके आकर्षक सौंदर्य की प्रतिष्ठा करके विस्मृति के गड्ढे में झोंकने वाले काल के हाथों को बहुत दिनों तक—सहस्रों वर्ष तक—थामे रहते हैं—

[illegible]

इस प्रकार के स्मारक काल के प्रवाह को कुछ थाम कर मनुष्य की कई [illegible] का [illegible] बन जाते हैं। मनुष्य अपने पीछे [illegible] को अपने [illegible] छोड़ना चाहता है। महाराजकुमार के सामने

सम्राटो की अतीत जीवन-लीला के ध्वस्त रंगमच है, सामान्य जनता की जीवन-लीला के नहीं। इनमें जिस प्रकार भाग्य के ऊँचे-से-ऊँचे उत्थान का दृश्य निहित है वैसे ही गहरे-से-गहरे पतन का भी। जो जितने ही ऊँचे पर चढ़ा दिखाई देता है गिरने पर वह उतना ही नीचे जाता दिखाई देता है। दर्शको को उसके उत्थान की ऊँचाई जितनी कुतूहलपूर्ण और विस्मयकारिणी होती है उतनी ही उसके पतन की गहराई मार्मिक और आकर्षक होती है। असामान्य की ओर लोगो की दृष्टि भी अधिक दौड़ती है, टकटकी भी अधिक लगती है। अत्यन्त ऊँचाई से गिरने का दृश्य मनुष्य कुतूहल के साथ देखता है, जैसा कि इन प्रबन्धो में भावुक लेखक कहते हैं—

"ऊँचाई से खड्ड मे गिरनेवाले जलप्रपात को देखने के लिए सैकडो कोसो की दूरी से मनुष्य चले आते है। उन उठे हुए कगारो पर टकरा कर उस जलधारा का छितरा जाना, खड-खड हो कर फुहारो के स्वरूप मे यत्र-तत्र विखर जाना, हवा मे मिल जाना—बस इसी दृश्य को देखने में मनुष्य को आनन्द आता है।"

जीवन तो जीवन—चाहे राजा का हो, चाहे रक का। उसके सुख और दुःख दो पक्ष होगे ही। इनमें से कोई पक्ष स्थिर नहीं रह सकता। ससार और स्थिरता? अतीत के लम्बे-चौड़े मैदान के बीच इन उभय पक्षो की घोर विषमता सामने रख कर आप जिस भाव-धारा में डूबे है उसी में औरो को भी डुबाने के लिए भावुक महाराजकुमार ने ये शब्द-स्रोत वहाए हैं। इस पुनीत भाव-धारा में अवगाहन करने से वर्तमान की, अपने-पराये की, लगी-लिपटी मैल छँटती है और हृदय स्वच्छ होता है। सुख-दुःख की विषमता पर जिसकी भावना मुख्यत प्रवृत्त होगी वह अवश्य एक ओर तो जीवन का भोगपक्ष—यौवन-मद, विलास की प्रभूत सामग्री, कला-सौंदर्य की जगमगाहट, राग-रग और आमोद-प्रमोद की चहल-पहल—और दूसरी ओर अवसाद, नैराश्य और उदासी सामने रखेगा। इतिहास-प्रसिद्ध वडे-वडे प्रतापी सम्राटो के जीवन को लेकर भी वह ऐसा ही करेगा। उनके तेज, प्रताप, पराक्रम, इत्यादि की भावना वह इतिहास-विज्ञ पाठक की सहृदयता पर छोड देगा। अपनी पुस्तक में महाराजकुमार ने अधिकाश में जो जीवन के भोगपक्ष का ही अधिक

विधान किया है उसका कारण मुझे यही प्रतीत होता है। इसी से 'मद' और 'प्याले' बार बार सामने आए हैं जो किसी किसी को खटक सकते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं सुख और दुःख के बीच का वैषम्य जैसा मार्मिक और हृदयस्पर्शी होता है वैसा ही उन्नति और अवनति, प्रताप और ह्रास के बीच का भी। इस वैषम्य-प्रदर्शन के लिए एक ओर तो किसी के पतन-काल के असामर्थ्य, दीनता, विवशता, उदासीनता इत्यादि के दृश्य सामने रखे जाते हैं, दूसरी ओर उसके ऐश्वर्यकाल के प्रताप, तेज, पराक्रम इत्यादि के वृत्त स्मरण किए जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दिल्ली के किले के प्रसग में शाहआलम, मुहम्मदशाह और बहादुरशाह के बुरे दिनो के चुने चित्र दिखा कर जो गूढ और गभीर प्रभाव डाला गया है उसे हृदय के भीतर गहराई तक पहुँचाने वाली वस्तु है अकबर, शाहजहाँ, औरगजेब आदि बादशाहो के तेज, प्रताप और पराक्रम की भावना। पर जैसा कि कहा जा चुका है भावुक लेखक ने इस भावना को प्राय व्यक्त नहीं किया है, उसे पाठक के अन्त करण में इतिहास द्वारा प्रतिष्ठित मान लिया है।

बात यह है कि सम्राटो के प्रभुत्व, प्रताप, अधिकार इत्यादि सूचित करने वाली घटनाओं का उल्लेख तो इतिहास करता ही है, अत भावुक कवि या लेखक अपनी कल्पना द्वारा जीवन के उन भीतरी-बाहरी ब्योरो को सामने लाता है जिन्हें इतिहास निष्प्रयोजन समझ छलाँग मारता हुआ छोड जाता है। ताजमहल जिस दिन बन कर पूरा हो गया होगा और शाहजहाँ बड़ी धूम-धाम के साथ पहले-पहल उसे देखने गया होगा वह दिन कितने महत्व का रहा होगा। पर जैसा कि महाराजकुमार कहते हैं, "उस महान दिवस का वर्णन इतिहासकारों ने कहीं भी नहीं किया है। कितने सहस्र नर-नारी [illegible] उस दिन उस अपूर्व मकबरे के दर्शनार्थ एकत्र हुए होंगे।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
प्रस्तुत लेखक की कल्पना इतिहास द्वारा छोड़े हुए जीवन के ब्योरों को सामने रखने में प्रवृत्त हुई है। बात बहुत ठीक है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना इतना

ही है कि इतिहास के शुष्क निर्जीव विधान में तेज, प्रताप और प्रभुत्व व्यंजित करनेवाले ब्योरे भी छूटे रहते हैं। उनके सजीव चित्र भी शक्तिशाली ऐतिहासिक पुरुषों की जीवन-स्मृति में अपेक्षित हैं। आशा है उनकी ओर भी महाराजकुमार की भाव-प्रेरित कल्पना प्रवृत्त होगी।

'शेष स्मृतियाँ' में अधिकतर जीवन का भोग-पक्ष विवृत है पर यह विवृति सुख-सौन्दर्य की अस्थिरता की भावना को विषण्णता प्रदान करती दिखाई पड़ती है। इसे हम लेखक का साध्य नहीं ठहरा सकते। संसार में सुख की भावना किस प्रकार सापेक्ष है इसकी ओर उनकी दृष्टि है। वे कहते हैं—

"दुख के बिना सुख ! नहीं, नहीं ! तब तो स्वर्ग नरक से भी अधिक दुखपूर्ण हो जायगा। .. .. .स्वर्ग का महत्व तभी हो सकता है जब उसके साथ नरक भी हो। स्वर्ग के निवासी उसको देखें तथा स्वर्ग की ओर नरकवासियों द्वारा डाली जाने वाली तरस-भरी दृष्टि की ध्यान को समझ सकें।

मनुष्य के हृदय से स्वतन्त्र सुख-दुख की, स्वर्ग-नरक की, कोई सत्ता नहीं। जो सुख-दुख को कुछ नहीं समझते, यदि वे कहीं हों भी तो समझना चाहिए कि उनके पास हृदय नहीं है ; वे दिलवाले नहीं—

"स्वर्ग और नरक। उनका भेद, सौन्दर्य और तुलना, इनको तो वे ही समझ सकते हैं जिनके वक्षस्थल में एक दिल—चाहे वह अधजला [illegible] या टूटा हुआ ही क्यों न हो—धड़कता हो। इस स्वर्ग को, इस नरक को, दिलवालों ने ही तो बसाया। यह दुनिया, इसके बन्धन सुख और दुख.
ये सब भी तो दिलवालों के ही अपने हैं।

'अनन्त यौवन चिर सुख तथा सभी इन सब का निर्माण करके दिल ने उस स्वर्ग की नींव डाली थी। परन्तु साथ ही असन्तोष तथा दुख का निर्माण भी तो दिल के ही हाथों हुआ था।

सुख के साथ दुःख भी दुबका-छिपा लगा रहता है और कभी-कभी प्रकट हो कर उस सुख का अन्त कर देता है—

'दिलवालों के स्वर्ग में नरक का [illegible]। अनन्तयौवना चिरसुन्दरी

भी होती है। उसका सहवास करके कौन चिरजीवी हुआ है ? सुख को दु ख के भूत ने सताया। मस्ती और उन्माद को क्षयरूपी राजरोग लगा।"

जब संसार में कोई वस्तु स्थायी नहीं तो सुख-दशा कैसे स्थायी रह सकती है ? जिसे कभी पूर्ण सुख-समृद्धि प्राप्त थी उसके लिए केवल उस सुख-दशा का अभाव ही दु ख स्वरूप होगा। उसे सामान्य दशा ही दु ख की दशा प्रतीत होगी। जो राजा रह चुका है उसकी स्थिति यदि एक सम्पन्न गृहस्थी की सी हो जायगी तो उसे वह दु.ख की दशा ही मानेगा। सुख की यह सापेक्षता समष्टि रूप में दु ख की अनुभूति की अधिकता बनाए रहती है किसी एक व्यक्ति के जीवन में भी, एक कुल या वंश की परपरा में भी। इसी से यह ससार दु खमय कहा जाता है।

इस दु खमय संसार में सुख की इच्छा और प्रयत्न प्राणियों की विशेषता है। यह विशेषता मनुष्य में सबसे अधिक रूपों में विकसित हुई है। मनुष्य की सुखेच्छा कितनी प्रबल, कितनी शक्तिशालिनी निकली! न जाने कब से वह प्रकृति को काटती छाँटती, ससार का कायापलट करती चली आ रही है। वह शायद अनन्त है, अनन्त का प्रतीक है। वह इस ससार में न समा सकी तब कल्पना को साथ ले कर उसने कहीं बहुत दूर स्वर्ग की रचना की—

"अमरत्व की भावना ही मनुष्य के जीवन को सौन्दर्य तथा माधुर्य से पूर्ण बनाती है। यह भौतिक स्वर्ग या उस पार का वह बहिश्त, एक ही भावना, चिर सुख की इच्छा ही उनमे पाई जाती है।"

इस चिर सुख के लिए मनुष्य जीवन भर लगातार प्रयत्न करता रहता है ; अनेक प्रकार के दु.ख, अनेक प्रकार के कष्ट उठाता रहता है। इस दु ख और कष्ट की परंपरा के बीच में सुख की जो थोडी सी झलक मिल जाती है वह उसको ललचाते रहने भर के लिए होती है, पर उसी को वह सुख मान लेता है—

"स्वर्ग-सुख, सुख-इच्छा का भावनापूर्ण पुज, वह तो मनुष्य की कठिनाइयो को, सुख तक पहुँचने के लिए उठाए गए कष्टो को देख कर हँस देता है, और मनुष्य उसी कुटिल हँसी से ही मुग्ध हो कर स्वर्ग-प्राप्ति का अनुभव करता है।"

उत्तरोत्तर सुख की इच्छा यदि मनुष्य के हृदय में घर न किये हो तो शायद उसे दुख के इतने अधिक और इतने बड़े धक्के न सहने पड़ें। जिसे संसार अत्यन्त समृद्धिशाली, अत्यन्त सुखी समझता है उसके हृदय पर कितनी चोटें पड़ी हैं कोई जानता है ? बाहर से देखने वालों को अकबर के जीवन में शान्ति और सफलता ही दिखाई पड़ती है। पर हमारे भावुक लेखक की दृष्टि जब फ़तेहपुर सीकरी के लाल लाल पत्थरों के भीतर घुसी तब वहां अकबर के हृदय के टुकड़े मिले—

"अपनी आशाओं और कामनाओं को निष्ठुर संसार द्वारा कुचले जाते देख कर अकबर रो पड़ा। उसका सजीव कोमल हृदय फट कर टुकड़े टुकड़े हो गया। वे टुकड़े सारे मग्न स्वप्नलोक में बिखर गए, निर्जीव हो कर पथरा गए। सीकरी के लाल लाल खण्डहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े हैं।"

चतुर्वर्ग में इसी सुखका नाम ही 'काम' है। यद्यपि देखने में 'अर्थ' और 'काम' अलग अलग दिखाई पड़ते हैं, पर सच पूछिए तो 'अर्थ' 'काम' का ही एक साधन ठहरता है, साध्य रहता है 'काम' या 'सुख' ही। अर्थसंचय, आयोजन और तैयारी की भूमि है; काम भोग-भूमि है। मनुष्य कभी अर्थ-भूमि पर रहता है, कभी काम-भूमि पर। अर्थ-साधना और काम-साधना के बीच जीवन बांटता हुआ वह चला चलता है। दोनों के स्वरूप "दोनों ध्रुवों की नाईं विभिन्न है'। इन दोनों में अच्छा सामंजस्य रखना सफलता के मार्ग पर चलना है। जो अनन्य भाव से अर्थ-साधना में ही लीन रहेगा वह हृदय खो देगा, जो आंख मूद कर काम-साधना में ही लिप्त रहेगा वह किसी अर्थ का न रहेगा। अकबर ने किस प्रकार दोनो का मेल किया था, देखिए—

'स्वप्नलोक के स्वप्नागार में पड़ा अकबर साम्राज्य-संचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य-कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।'

अकबर को अपना साम्राज्य दृढ़ करने के लिए बहुत कष्ट उठाने पड़े थे, बड़ी तपस्या करनी पड़ी थी, पर उसके हृदय की वासनाएँ मारी नहीं गई थीं—

"प्रारभिक दिनो की तपस्या उसकी उमड़ती हुई उमगो को नही दबा
सकी थी। विलास-वासना की ज्वाला अब भी अकबर के दिल मे जल रही थी,
केवल उसके ऊपरी सतह पर सयम की राख चढ गई थी।"

गंभीर चिंतन से उपलब्ध जीवन के तथ्य सामने रख कर जब कल्पना मूर्त
विधान में और हृदय भाव-संचार में प्रवृत्त होते हैं तभी मार्मिक प्रभाव उत्पन्न
होता है। 'शेष स्मृतियाँ' इस प्रकार के अनेक मार्मिक तथ्य हमारे सामने लाती
हैं। मुमताजमहल बेगम शाहजहाँ को इस संसार में छोड़ चली गई। उसका
जगत्-विख्यात मकबरा भी बन गया। शाहजहाँ के सारे जीवन पर उदासी छाई
रही। पर शोक की छाया मनुष्य की सुख-लिप्सा को सब दिन के लिए दबा
दे, ऐसा बहुत कम होता है। कोई प्रिय वस्तु चली जाती है। उसके अभाव
की अन्धकारमयी अनुभूति सारा अन्त प्रदेश छेंक लेती है और उसमें किसी
प्रकार की सुख-कामना के लिए जगह नहीं रह जाती। पर धीरे-धीरे वह भावना
सिमटने लगती है और नई कामनाओ के लिए अवकाश होने लगता है। मनुष्य
अपना मन लगाने के लिए कोई सहारा ढूंढने लगता है क्योंकि मन बिना कहीं
लगे रह नही सकता। शाहजहाँ ने महत्त्व-प्रदर्शन और सौन्दर्य-दर्शन की
कामना को खोद खोद कर जगाया और उसकी तुष्टि की भीख कला से माँगी।
दिल्ली उसके हृदय के समान ही उजड़ी पडी थी। दिल्ली फिर से बसा कर
उसने अपना हृदय फिर से बसाया। मन-ही-मन दिल्ली को शाहजहाँबाद
बना कर वह उसकी रूप-रेखा खींचने लगा। नर-प्रकृति के एक विशेष स्वरूप
को सामने लानेवाली शाहजहाँ की इस मानसिक दशा की ओर महाराजकुमार
ने इस प्रकार दृष्टिपात किया है—

"एक बार मुंह से लगी नही छूटती। एक बार स्वप्न देखने की, सुख-
स्वप्न-लोक मे विचरने की लत पडने पर उसके बिना जीवन नीरस हो जाता
है। प्रेम-मदिरा को मिट्टी मे मिला कर शाहजहाँ पुन मस्ती लाने को लाला-
यित हो रहा था, अपने जीवन-सर्वस्व को खोकर जीवन का कोई दूसरा आसरा
ढूँढ रहा था। सुन्दर सुकोमल अनारकली को कुचल देने वाली
कठोर-हृदया राज्यश्री शाहजहाँ की सहायक हुई। राज्यश्री ने सम्राट्
को प्रेमलोक से भुलावा देकर ससार के स्वर्ग की ओर आकृष्ट किया।"

किसी को दुःख से संतप्त देख बहुत-से ज्ञानी बनने वाले इस जीवन की क्षणभंगुरता का, संयोग-वियोग की निःसारता आदि का उपदेश देने लग जाते हैं। इस प्रकार के उपदेश शुष्क प्रथानुसरण या अभिनय के अतिरिक्त और कुछ नहीं जान पड़ते। दुःखी मनुष्य के हृदय पर इनका कोई प्रभाव नहीं, कभी कभी तो ये उसे और भी क्षुब्ध कर देते हैं—

"दार्शनिक कहते हैं, जीवन एक बुदबुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी बताते हैं कि इस जीवन का संग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह में संयोग से साथ बहते हुए लकड़ी के टुकड़ों के साथ तथा विलग होने की कथा है। परन्तु क्या ये विचार एक संतप्त हृदय को शान्त कर सकते हैं? . .. . सांसारिक जीवन की व्यथाओं से दूर बैठा हुआ जीवन-संग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण संग्राम में युद्ध करते हुए घटनाओं के घोर थपेड़े खाते हुए हृदयों की क्या दशा होती है, यह एक भुक्तभोगी ही बता सकता है।'

इसी प्रकार जीवन के और तथ्य भी हमारे सामने आते हैं। अपने प्राण या प्रभुत्व-ऐश्वर्य की रक्षा की बुद्धि या सामर्थ्य न रख कर भी किसी के प्रेम के सहारे मनुष्य किस प्रकार अपना जीवन पार करता जाता है इसका एक सच्चा उदाहरण जहाँगीर और नूरजहाँ के प्रसंग में मिलता है। जहाँगीर तो नूरजहाँ को पाकर 'मोहमयी प्रमाद-मदिरा' पीकर पड़ गया, नूरजहाँ ही उसके साम्राज्य को और समय समय पर उसको भी सँभालती रही—

'जहाँगीर भी आँखें बन्द किए पड़ा पड़ा सुरा, सुन्दरी तथा संगीत के स्वप्नलोक में विचर रहा था। किन्तु जब एक झोंका आया और जब तूफान का अन्त होने लगा, तब जहाँगीर ने आँखें कुछ खोलीं देखा कि उसको लिये नूरजहाँ राजमहिषी के पास भागी चली जा रही थी सुरंग और महावत जो झेलम के उस पार लेने वाले पड़े थे।'

जीवन के एक तथ्य का मूर्त और सजीव चित्र खड़ा करने के लिए सहृदय लेखक ने कैसा सजीव और स्वाभाविक व्यापार चुना है। 'जहाँगीर ने आँखें कुछ खोलीं, देखा कि उसको लिए नूरजहाँ भागी चली जा रही थी।"

लेकर भागने का व्यापार सँभालने और बचाने का प्राकृतिक और सनातन रूप सामने खड़ा कर देता है।

यह बात नहीं है कि महाराजकुमार की दृष्टि अपने समकक्ष जीवन पर ही, शक्तिशाली सम्राटो के ऐश्वर्य, विभूति, उत्थान-पतन आदि पर ही पड़ी हो, सामान्य जनता के सुख-दुख की ओर न मुड़ी हो। आपके भीतर जो शुद्ध मनुष्यता की निर्मल ज्योति है उसी के उजाले में आपने सम्राटो के जीवन को भी देखा है। यद्यपि जिन पांचो स्थानो को आपने सामने रखा है उनका सम्बन्ध इतिहास-प्रसिद्ध शासको से है फिर भी उनके अतीत ऐश्वर्य-मद का स्मरण करते समय आपने उन बेचारों का भी स्मरण किया है जिनके जीवन का सारा रस निचोड़ कर वह मद का प्याला भरा गया था—

"वैभव से विहीन सीकरी के वे खंडहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हें उन करोड़ो मनुष्यो की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासको, धनिको तथा विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थी। आज भी उन भव्य खडहरो मे उन पीड़ितो का रुदन सुनाई देता है।"

स्मृति-स्वरूपा कल्पना कवियो और लेखको को या तो मुख्यत अतीत के रूप-चित्रण में प्रवृत्त करती है अथवा कुछ मार्मिक रूपो को ले कर भावो की प्रचुर और प्रगल्भ व्यजना में। दोनो का अपना अलग अलग मूल्य है। मेरी समझ में महाराजकुमार की प्रतिभा दूसरे ढर्रे की है। आपके प्रबन्धो में मानसिक दशाओ का, भावो के उद्गार का ही मुख्य स्थान है, वस्तु-चित्रण का गौण या अल्प। भावुक लेखक की दृष्टि किसी अतीत काल-खड की सस्कृति के स्वरूप की ओर नहीं है, मानव-जीवन के नित्य और सामान्य स्वरूप की ओर है। इसका आभास मोती मसजिद के इस उल्लेख में कुछ मिलता है—

"उस निर्जन स्थान मे एकाध व्यक्ति को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि उन दिनो यहाँ आनेवाले व्यक्तियो मे से किसी की आत्मा अपनी पुरानी स्मृतियो के बन्धन मे पड कर खिची चली आई है।"

यह भावना अत्यन्त स्वाभाविक है। पर संस्कृति के स्वरूप पर विशेष दृष्टि रखनेवाला भावुक उपर्युक्त वाक्य में आए हुए "एकाध व्यक्ति" के पहले 'पुरानी चाल-ढाल-वाला' विशेषण अवश्य जोड़ता।

वस्तु-चित्रण की ओर यदि महाराजकुमार का ध्यान होता तो दरबार की सजावट, दरबारियों की पोशाक, उनके खम्भे टेक कर खड़े होने, उनकी तालीम आदि का, इसी प्रकार विलास-भवन में बेगमों, बाँदियों और खोजों की वेशभूषा, ईरान और दमिश्क के रंगबिरंगे कालीनों और बड़े बड़े फानूसों और शमादानों का दृश्य अवश्य खड़ा करते। पर दृश्य-विधान उनका उद्देश्य नहीं जान पड़ता। इसका अभिप्राय यह नहीं कि विस्तृत वस्तु-चित्रण है ही नहीं। यह कहा जा चुका है कि सुख-दुःख का वैषम्य दिखाने के लिए महाराज-कुमार ने भोग-पक्ष ही अधिकतर लिया है। अत जहाँ सुखमय आमोद-प्रमोद, शोभा, सौन्दर्य, सजावट आदि के प्राचुर्य की भावना उत्पन्न करना इष्ट हुआ है वहाँ विस्तृत चित्रण भी अनूठेपन के साथ मिलता है, जैसे दिल्ली की किलेवाली नहर की जलक्रीड़ा के वर्णन में—

'उस स्वर्गंगा में, उस [illegible] में, [illegible] की [illegible] सुन्दरियां। उन [illegible] पत्थरों पर अपनी [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

सीकरी के प्रसिद्ध फकीर सलीमशाह से मिलने पर अकबर का राज-तेज तप के तेज के सामने किस प्रकार फीका पड़ा और उसकी वृति किस प्रकार बहुत दिनों तक कुछ और ही रही, पर फिर ऐश्वर्य-विभूति में लीन हुई इसका बडे सुन्दर ढंग से निरूपण है—

"अकबर ने तप और सयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गई। पुन सर्वत्र भौतिकता का अन्धकार छा गया, किन्तु इस वार उसमें आशा की चाँदनी फैली।'

इसी प्रकार मुमताजमहल के देहावसान पर शाहजहाँ की मनोवृत्ति का भी मार्मिक चित्रण है।

अब थोड़ा महाराजकुमार के वाग्वैशिष्ट्य को भी समझना चाहिए। उनके निबन्ध भावात्मक और कल्पनात्मक है। कल्पना से मेरा अभिप्राय वस्तु की कल्पना या प्रस्तुत की कल्पना नहीं; प्रस्तुत के वर्णन में अत्यन्त उद्बोधक और व्यजक अप्रस्तुतो की कल्पना है। इसमें सन्देह नहीं कि अप्रस्तुत विधान अत्यन्त कलापूर्ण, आकर्षक और मर्मस्पर्शी है। वाह्य परिस्थितियों या वस्तुओ का संश्लिष्ट चित्रण तो इन भावप्रधान निबन्धो का लक्ष्य नहीं है, पर उन मूर्त्त वस्तुओ के सौन्दर्य, माधुर्य, दीप्ति इत्यादि की भावना जगाना उनके भाव-विधान के अन्तर्गत है। अत इस प्रकार की भावना जगाने के लिए अप्रस्तुतो के आरोप और अध्यवसान का, साम्यमूलक अलंकार-पद्धति का सहारा लिया गया है। जैसे नगरी को कई जगह प्रेयसी सुन्दरी का रूपक दिया गया है। शाहजहाँ की वसाई दिल्ली "बढते हुए प्रौढ साम्राज्य की नवीन प्रेयसी" और अन्यत्र "वहुभर्तृका पाँचाली" कही गई है। लाल किले का सकेत बडे ही अनूठे ढग से इस प्रकार किया गया है—

"अपने नये प्रेमी को स्थान देने के लिए उसने एक नवीन हृदय की रचना की।"

कहीं कहीं प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक साथ बहुत ही सुन्दर समन्वय है, जैसे—

"वह लाल दीवार और उस पर वे श्वेत स्फटिक महल—उस लाल लाल मेज पर लेटी हुई वह श्वेतागी।"

अपना शाहखानदान किस प्रकार दिल्ली की सल्तनत न सँभाल सका और बहुत दिनों तक मराठों की देख-रेख में रह कर अन्त में सात समुद्र पार के अँग-रेजों की शरण में गया जिससे उसकी राजशक्ति उससे विलुप्त होकर [illegible] अँगरेजों के हाथ में चली गई इसी का संकेत ऊपर के उद्धरण में है।

भावुक लेखक ने हुमायूँ के मकबरे को स्वर्ग की बगल का नरक कहा है, जिसमें एक दूसरे से दिल का दर्द सुनाने के लिए—

"न जाने कितने दुखी मुगल आत्मा ने आकर आश्रय लिया। दुःख का वह अपार सागर, निराशा की [illegible] का वह लहराता हुआ कुण्ड, आंसुओं का वह भीषण प्रवाह, टूटे हुए दिलों की वह दर्दभरी चीख! वे टूटे दिल एक साथ बैठ कर रोते हैं, रो रो कर उन्मत्त हो गए और उन रक्त-रंजित पत्थरों को धो डाला [illegible] पर हृदय का वह रुधिर बहुत गहरा रंग लाया है, उनके धोये नहीं धुलता।"

जो दारा की गति से परिचित हैं, जो जानते हैं कि सन् १८५७ के बलवे में शाही खानदान के लोगों ने उच्छिन्न होने के पहले उसी मकबरे में पनाह ली थी, वे ही ऊपर की पंक्तियों का पूरा प्रभाव ग्रहण कर सकते हैं।

दिल्ली का किला हमारे भावुक महाराजकुमार को 'उजड़ा स्वर्ग' दिखाई पड़ा है। उसने उनके हृदय में न जाने कितनी करुण स्मृतियाँ जगाई हैं। दिल्ली के नाम-मात्र के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह ने अपना क्षोभपूर्ण दीन जीवन उसी किले में रोते रोते बिताया था। इस भौतिक जगत् में सुख का कहीं ठिकाना न पाकर वे अपना नाम 'जफर' रख कर कविता के कल्पनालोक में भागा करते थे। पर वहाँ भी उनका रोना न छूटा; वहाँ भी बुरों की जान को वे रोते थे—'ऐसे रोए बुरों की जाँ को हम, रोते रोते उलट गईं आँखें'। उनके सामने जौक और गालिब ऐसे उस्ताद अपने कलाम सुनाते थे। शाहजादे की शादी के मौके पर गालिब ने एक 'सेहरा' लिखा था जिसके किसी वाक्य में जौक ने अपने ऊपर आक्षेप समझ कर जवाब दिया था। पर शायरी की इस चहल-पहल से बहादुरशाह के आँसू रुकने वाले नहीं थे। बहादुरशाह के जीवन के अन्तिम दिनों की ओर लेखक ने इस प्रकार गूढ संकेत किया है—

"वह उजड़ा स्वर्ग भी पीर उठा अपने उस शूल से। निरन्तर रक्त के आँसू बहाने वाले उस नासूर को निकाल बाहर करने की उस स्वर्ग ने सोची। परन्तु   उफ़! वह नासूर स्वर्ग के दिल में ही था, उसको निकाल बाहर करने में स्वर्ग ने अपने हृदय को फेंक दिया। और अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध स्वर्ग जब दर्द के मारे तड़प उठा, तब भूडोल हुआ, अन्धड़ उठा, प्रलय का दृश्य प्रत्यक्ष देख पड़ा। पुरानी सत्ता का भवन ढह गया, समय-रूपी पृथ्वी फट गई और सम्पूर्ण उसके अनन्त गर्भ में सर्वदा के लिए विलीन हो गया।"

इस हृदयद्रावक रूपजाल के भीतर कौशलपूर्वक जो घटनाएँ छिपी हैं उनकी ओर पाठक का ध्यान जल्दी नहीं जा सकता। वह यह जल्दी नहीं समझ सकता कि उजड़े स्वर्ग का कँपना है सन् १८५७ की हलचल का पूरब से बढ़ते बढ़ते दिल्ली तक पहुँचना, नासूर है बहादुरशाह, नासूर का निकलना है बहादुरशाह का लाल किला छोड़ना और भूडोल और अन्धड़ है दिल्ली पर कब्ज़ा करने वाले बलवाइयों के साथ अँगरेज़ों का घोर युद्ध।

सुख-दुःख की दशाओं का प्रत्यक्षीकरण भी इसी रमणीय अलंकृत पद्धति पर हुआ है। शाहजहाँ ने यद्यपि अपनी प्रौढ़ावस्था में नई दिल्ली बसाई पर किले के भीतर मानो वह स्वर्ग का एक खंड ही उतार लाया। वह विभूति, वह शोभा, वह सजावट अन्यत्र कहाँ? उस स्वर्गधाम के प्रमत्त विलास और उन्मत्त उल्लास की यह झलक देखिए—

"पत्थरों तक पर मस्ती छा जाती थी, वे भी मत्त उत्तप्त हो जाते थे और उन पत्थरों तब से सुगन्धित जल के फव्वारे छूटने लगते थे।   उस स्वर्ग की वह राह! विलासिता बिखरी थी उस राह में, मादकता की लाली वहाँ सब ओर फैली हुई थी और चिर संगीत दुःख की भावना तक को धक्के देता था। दुःख, दुःख,   उसे तो नौबत के डंके की चोट, मुर्दे की खाल की ध्वनि ही निकाल बाहर करने को पर्याप्त थी। बाँस की वे बाँसुरियाँ—अपना दिल तोड़ तोड़ कर, अपने वक्षस्थल को छिदवाकर भी सुख का अनुभव करती थीं। उन मदमस्त मतवालों के अधरों का चुम्बन करने को लालायित बाँस के उन टुकड़ों की आहों में भी सुमधुर सुखसंगीत ही निकलता था। मुर्दे भी उस स्वर्ग में पहुँच कर भूल गये अपनी मृत्यु-पीड़ा, उल्लास

के मारे फूल कर ढोल हो गये, और उनके भी रोम रोम से यही आवाज़ आती थी 'यही है, यही है, ।'"[१]

पतन-काल के ध्वंसकारी आघातों, विपत्ति के झोंकों और प्रलयंकर प्रवाहों के उपरान्त सम्पत्ति के जीर्ण, शीर्ण और जर्जर अवशेषों के बीच मरती हुई कामनाओं, उठती हुई वेदनाओं, उमड़ते हुए आंसुओं, दहकती हुई आहों तथा नैराश्यपूर्ण बेबसी, दीनता और उदासी का एक लोक ही अपनी प्रतिभा के बल से महाराजकुमार ने खड़ा कर दिया है। उपर्युक्त स्वर्ग जब उजड़ा है तब इस करुणलोक में परिणत हुआ है। जहां शाहजहां ने वह स्वर्ग बसाया था वहीं अन्त में उसके घराने भरके लिए एक छोटा-सा नरक तैयार हो गया जिसके बाहर वह कभी निकल न सका। इस नरक को अपने गर्भ के भीतर रख कर स्वर्ग अपना वह रूप-रंग कब तक बनाए रख सकता था? शाहजहां की दृष्टि ज़बर्दस्ती हटा दी जाने से और औरंगज़ेब के भूल कर भी उसकी ओर न जाने से उसका रंग फीका पड़ गया और धीरे धीरे उडने लगा। यह तो हुई बाहर की दशा। उस स्वर्ग के अन्तर्जगत् में भी, मानस-प्रदेश में भी, कई खंड ऐसे थे जो एक दम रूखे-सूखे थे, जिनमें सरसता का नाम न था। बहुत-से प्राणी अत्यन्त नीरस जीवन व्यतीत करते थे—

"अनेकों ने दिल नामक वस्तु के अस्तित्व को भुला दिया था। दिल—हृदय—उसके नाम पर तो उनके पास दो चुटकी राख थी।"

मुग़ल बादशाहों के अन्तःपुर में शाहज़ादियों का ऐसा ही दबाया हुआ जीवन था। न उनमें यौवन का उल्लास उठने पाता था, न प्रेम का आलंबन खड़ा होने पाता था। विवाह भला उनका किसके साथ हो सकता था? जहानआरा के अंतिम श्वासों से आवाज़ आती थी—

"नहीं, नहीं! मेरी क़ब्र पर पत्थर न रखना। ... इस उत्तप्त छाती पर रह कर उस बेचारे पत्थर की क्या दशा होगी?"

उन शाहज़ादियों की क़ब्रों के भीतर पडे कंकाल सुख को एक दुराशा मात्र बता रहे हैं। महाराजकुमार को इन कंकालों के गडे दुःख जगत् के

---

[१] अगर फ़िरदौस बर रुए ज़मीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।

दिल्ली के क़िले के भीतर भर के बादशाह बहादुरशाह किस प्रकार उस सागर में बहे और बर्मा के किनारे जा लगे, यह दु.ख भरी कहानी इतिहास के पन्नो में टँकी हुई है। वह घोर अध पतन, भीषण विप्लव और दारुण दुर्विपाक दिगन्तव्यापी स्वरूप में सामने लाया गया है। इस स्वरूप को खडा करने में प्रकृति की सारी ध्वंसकारिणी शक्तियाँ, भूतो के सारे कराल वेग तथा मानस-लोक के सारे क्षोभ, सारी व्याकुलता, सारे उद्वेग, सारी विह्वलता और सारी उदासी काम में लाई गई है—

"उफ ! स्वर्ग की वह अन्तिम रात ! जब स्वर्गीय जीवन अन्तिम साँसें ले रहा था। प्रलय का प्रवाह स्वर्ग के दरवाज़े पर टकरा टकरा कर लौटता था और अधिकाधिक वेग के साथ पुन आक्रमण करता था। सायँ सायँ करती हुई ठडी हवा बह रही थी, न जाने कितनो के भाग्य-सितारे टूट टूट कर गिर रहे थे। दुर्भाग्य के उस दुर्दिन की अधेरी अमावस्या की रात मे उस स्वर्ग मे घूमती थी उस स्वर्ग के निर्माताओ की प्रेतात्माएँ। .....परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग मे मुगलो का अन्तिम चिराग जलता रहा।"

बहादुरशाह का लाल किला छोड़ना इतिहास की एक अत्यत मार्मिक घटना है। महाराजकुमार की अध्यवसान-आरोपमयी अलकृत शैली मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने की कितनी शक्ति रखती है यह जैसे सर्वत्र वैसे ही यहाँ भी दिखाई पडता है—

"सूरज निकला। अन्धड बढ रहा था, दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्यरूपी बादलो से छा रहा था, . वह दिया, स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ झिलमिला कर बुझ गई, और तब . उस वश की आशाओ का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषो का, अकबर और शाहजहाँ के वशजो की अन्तिम सत्ता का जनाज़ा उस स्वर्ग से निकला। रो रो कर आसमान ने सर्वत्र आँसू के ओसकण बिखेरे थे, इस कठोर-हृदया पृथ्वी को भी आहो के कुहरे मे राह सूझती न थी। परन्तु . विपत्तियो का मारा, जीवन-यात्रा का वह थका हुआ पथिक, सितम पर सितम सह कर भी मुगलो की सत्ता तथा उनके अस्तित्व के जनाज़े को उठाये, अपने भग्न हृदय को समेटे चला जा रहा था।"

'बेबसी का मजार'—'जीवित समाधि'—बना हुआ बादशाह उसी स्वर्ग के प्रतिवेशी नरक में—हुमायूँ के मकबरे में पनाह लेता है। फिर वहाँ से कैद होकर बर्मा जाता है—

"नरक ! दुख का वह आगार भी बेबसी के इस मजार को देखकर रो पड़ा। . . .वहीं उस नरक में, अकबर की प्यारी सत्ता पृथ्वी मे समा गई, जहाँगीर की विलासिता बिखर गई, शाहजहाँ का वैभव जल-भुन कर खाक हो गया, औरङ्गजेब की कट्टरता मुगलो के रुधिर म डूब गई और पिछले मुगलो की असमर्थता भी न जाने कहाँ खो गई। लोहा बजा कर दिल्ली पर अधिकार करने वाले लोहा खडखडाते हुए दिल्ली से निकले, लोहा लेकर वे आए थे, लोहा पहने वहाँ से गए।"

मुग़ल सम्राटो की विपत्ति और नाश की उसी रगभूमि पर, हुमायूँ के उसी नरक-रूप मकबरे के पास दुःख से जर्जर बहादुरशाह के सामने उनके बेटे और दो पोते ढूंढ कर लाए गये और गोली से मार दिए गये। तड़प तड़प कर उस अभागे बुड्ढे के सामने उन्होंने प्राण छोड़े—

'दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट् की एकमात्र आशाएँ रक्तरजित हो कर पडी थी। कुचली जाने पर उनका लोथडा खून से शराबोर खड खड हो कर पडा था, और उन भग्नाशाओ के घाव तक मुगलो के उन भीषण दुर्भाग्य पर खून के दो आंसू बहाए बिना न रह सके। बहादुर नरक मे भी लुट गया। वहाँ उसने अपने टूटे दिल को भी कुचला जाते देखा, उस हृदय की गम्भीर दरारो की खोज होते देखी और अपने दिल के उन टुकडो को तलवार द्वारा ठुकराया जाते देखा।

अपने वश का नाश अपनी आखो के सामने देख कर बहादुरशाह कैद होकर दिल्ली से निकले हिन्दुस्तान से निकले और बर्मा पहुँचा दिए गए जहा मगोल ढाचे के पीले रग के लोग और पीले वस्त्र लपेटे भिक्षु ही भिक्षु दिखाई देते थे। भीतर मरी हुई आशा की पीली मुर्दनी छाई हुई थी बाहर भी सब पीला ही पीला दिखाई देता था। अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् का बना अनूठा सामञ्जस्य नीचे दिखाया गया है—

अब तो अपनी आशा के [illegible]

नष्ट होते देख कर उसे आशा की सूरत तो क्या उसके नाम से घृणा हो गई।
इस भारत से उसने मुख मोड लिया। उसे अब निराशा का पीलिया हो गया, और तब वह पहुँचा उस देश में जहाँ सब कुछ पीला ही पीला देख पडता था। नर-नारी भी पीत वर्ण की चादर ही ओढे नहीं फिरते थे किन्तु स्वय भी उस पीत वर्ण मे ही शराबोर थे। निराशा के उस पुतले ने निराशा-पूर्ण देश की उस एकान्त अँधेरी सुनसान रात्रि मे ही अन्तिम साँसे तोडी।"

उस स्वर्ग की—लाल किले के भीतर के महलों की—सम्राटो की प्रेयसी उस दिल्ली की क्या दशा हुई क्या यह भी बताने की बात है? वह ध्वस्त हो गया। जमुना भी किले को छोड कर हट गई। संगमर्मर के महलो के भीतर जमुना का जो जल बहा करता था वह भी बंद हो गया। नहरें सूखी पडी है—

"स्वर्ग उजड गया और दुर्भाग्य के उस अन्धड ने उसके टूटे दिल को न जाने कहाँ फेक दिया। उस चमन का वह बुलबुल रो चीख कर, तडफडा कर न जाने कहाँ उड गया।" "यमुना के प्रवाह का मार्ग भी बदला। उस स्वर्ग को, स्वर्ग के उस शव को, छोड कर वह चल दी, और अपने इस वियोग पर वह जी भर कर रोई, किन्तु उसके उन आँसुओ को, स्वर्ग के प्रति उसके इस स्नेह को स्वर्ग के दुर्भाग्य ने सुखा दिया, उस नहर-इ-बहिश्त ने भी स्वर्ग की धमनियो मे बहना छोड दिया। स्वर्ग भी खड खड हो गया, उसकी भाग्य-लक्ष्मी वही उन्ही खँडहरो मे दब कर मर गई।"

अब तो किले की दीवारो के भीतर उस स्वर्ग का खडहर ही रह गया है जिसके बीच खडे दर्शक का हृदय उसकी अतीव सजीवता, सुषमा और सरसता की स्मृति-स्वरूपा कल्पना में प्रवृत्त होता है—

"भारतीय सम्राटो की असूर्यम्पश्या प्रेयसी का वह अस्थिपजर दर्शको के लिए देखने की एक वस्तु हो गया है। दो आने मे ही हो जाती है राज्यश्री की उस लाडिली, शाहजहाँ की नवोढा के उस सुकोमल शरीर के रहे-सहे अवशेषो की सैर! उस उजडे स्वर्ग को, उस अस्थिपजर को देख कर ससार आश्चर्य-चकित हो जाता है, श्वेत हड्डियो के उन टुकडो मे सुकोमलता का अनुभव करता है, उन सडे-गले, रहे-सहे, लाल-लाल मासपिडो मे उसे मस्ती की मादक गन्ध आती जान पडती है। उस शान्त निस्तब्धता मे उस मृत स्वर्ग

"एकबारगी यमुना त्रिकाल-सम्बन्धी दृश्यो की त्रिवेणी बन गई, उत्थान की लाली, प्रताप का उजेला तथा अवसान की कालिमा, तीनो का सम्मिलित प्रतिविम्ब उस महानदी मे देख पडता था।"

जीवन-दशा के चित्रण के लिए कई स्थलो पर प्रकृति के नाना रूपो को लेकर बडी सुन्दर हेतूत्प्रेक्षाएँ मिलती है। जहांगीर और अनारकली के प्रेम का दु खपूर्ण अन्त हुआ यह इतिहास बतलाता है। वह विशाल और उज्ज्वल प्रेम मानो समस्त प्रकृति की शक्तियो से देखा न गया। सब-की-सब उसे ध्वस्त करने पर उद्यत हो गई—

"आह ! यह सुख उनसे देखा न गया। अनारकली को खिलते देखकर चॉद जल उठा, उस ईर्ष्याग्नि मे वह दिन दिन क्षीण होने लगा। उषा ने अनारकली की मस्ती से भरी अलसाई हुई उन अधखुली पलको को देखा और क्रोध के मारे उसकी ऑख लाल लाल हो गई। गोधूली ने इस अपूर्व सुखद मिलन को देखा और अपने अचिरस्थायी मिलन को याद कर उसने अपने मुख पर निराशा का काला घूंघट खीच लिया।"

महाराजकुमार के ये सब निबन्ध भावात्मक है यह तो स्पष्ट है। भावात्मक निबन्धो की दो शैलियां देखी जाती है—धारा-शैली और तरग-शैली। इन निबन्धो की तरग-शैली है जिसे विक्षेप-शैली भी कह सकते है। यह भावाकुलता की उखडी-पुखडी शैली है। इसमें भावना लगातार एक ही भूमि पर समगति से नहीं चलती रहती , कभी इस वस्तु को, कभी उस वस्तु को पकड कर उठा करती है। इस उठान को व्यक्त करने के लिए भाषा का चढाव-उतार अपेक्षित होता है। हृदय कही वेग से उमड उठता है, कहीं वेग को न सँभाल सकने के कारण शिथिल पड जाता है, कही एकबारगी स्तब्ध हो जाता है। ये सब बातें भाषा में झलकनी चाहिए। 'शेष स्मृतियां' जिस शैली पर लिखी गई उसमें इन सब बातो की पूरी झलक है। कहीं कुछ दूर तक सम्बद्ध और बीच-बीच में उखडे हुए वाक्य, कही छूटे हुए शून्य स्थल, कहीं अधूरे छूटे प्रसग, कहीं वाक्य के किसी मर्मस्पर्शी शब्द की आवृत्ति, ये सब लक्षण भावाकुल मनोवृत्ति का आभास देते है। इन्हें हम भाषा की भावभगी कह सकते हैं।

"शाहजहाँ बेबस बैठा रो रहा था। अपने प्रेम को अपनी आँखों के सामने उसने मिट्टी मे मिलते देखा। और तब .. उसने अपने दिल पर पत्थर रखकर अपनी प्रेयसी पर भी पत्थर जड़ दिये।"

'पत्थर रखना' एक ओर तो लाक्षणिक है, दूसरी ओर प्रस्तुत। दोनों का कैसा मार्मिक मेल यहाँ घटा है।

"उस नरक के वे कठोर पत्थर, अभागो के टूटे दिलो के वे घनीभूत पुज भी रो पडे।" इसमें भीतर और बाहर की बिम्ब-प्रतिबिम्ब स्थिति दिखाई गई है।

मूर्त्त रूप खडा करने के लिए जिस प्रकार भाववाचक शब्दो के स्थान पर कुछ वस्तुवाचक शब्द रखे जाते है उसी प्रकार कभी कभी लोकसामान्य व्यापक भावना उपस्थित करने के लिए व्यक्तिवाचक या वस्तुवाचक शब्दो के स्थान पर उपादान लक्षणा के बल पर भाववाचक शब्द भी रखे जाते है। इस युक्ति से जो तथ्य रखा जाता है वह बहुत भव्य, विशाल और गंभीर होकर सामने आता है। इस युक्ति का अवलंबन हमें बहुत जगह मिलता है जैसे—

"तपस्या के चरणो मे राज्यश्री ने प्रणाम किया।"

"दिल्ली के उस स्वर्ग की मस्ती गली-गली भटकती फिरी, मादकता हिजडो के पैरो मे लोटने लगी, विलासिता सूदखोर बनियो के हाथ बिकी।"

जड में सजीवता के आरोप के थोडे से सुन्दर उदाहरण लीजिए—

"उन श्वेत पत्थरो मे से आवाज आती है—'आज भी मुझे उसकी स्मृति है'।"

"उन पहाडियों की मस्ती फूट पडी, उनके भी उन ऊबड-खाबड कठोर शुष्क कपोलों पर यौवन की लाली झलकने लगी।"

"वे भी दिन थे जब पत्थरों तक मे यौवन फूट निकला था। जब बहुमूल्य रंगबिरंगे सुन्दर रत्न भी उन कठोर निर्जीव पत्थरो मे चिपटने को दौड पडे और चाँदी-सोने ने भी जब उनमे लिपट कर गौरव का अनुभव किया था। उन श्वेत पत्थरो मे भी वासना और आकांक्षाओं की रंग-बिरंगी भावनाएँ झलकती थीं। उन सुन्दर सुडौल पत्थरो के वे आभूषण, वे

पूर्ण हास्य तथा विषादमय करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनियाँ। वे अजात आत्माएँ आज भी उन वैभवविहीन खडहरो मे घूमती है। किन्तु जब धीरे धीरे पूर्व मे अरुण की लाली देख पडती है, आसमान पर स्वच्छ नीला परदा पडने लगता है, तब पुन इन महलो मे वही सन्नाटा छा जाता है।"

साहित्य-समीक्षको का कहना है कि कवि जिस क्षण में अनुभव करता है उस क्षण में तो लिखता नहीं। पीछे कालान्तर में स्मृति के आधार पर वह अपनी भावना व्यक्त करता है जो कुछ-न-कुछ विकृत अवश्य हो जाती है। इस बात का उल्लेख भी एक स्थल पर इस प्रकार मिलता है—

"आधुनिक लेखक तो क्या, उन स्वप्न के दर्शक भी, उनका पूरा पूरा जीता-जागता वृत्तान्त नही लिख सके। जिस किसी ने स्वय यह स्वप्न देखा था, उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया। और जब नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तब नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी मे वह चचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके बिना उस वर्णन में कोई भी आकर्षण या जीवन नही रहता है।"

मै तो आश्चर्यपूर्वक देखता हूँ कि आपकी लेखनी में वही चचलता, वही मादकता, वही स्फूर्ति है जो आपकी भावना में उस समय रही होगी जब आप उन पुराने खँडहरो पर खडे रहे होगे।

अपनी चिर पोषित और लालित भावनाओ को हृदय से निकाल कर इस बेढब ससार के सामने रखते हुए आपको कुछ मोह हुआ है, आप कुछ हिचके भी है—

"हाँ! अपने भावो को लुटाने निकला हूँ परन्तु किस दिल से उन्हे कहूँ कि जाओ। यह सत्य है कि ये रही-सही स्मृतियाँ दिल मे बहुत दर्द पैदा करती है, फिर भी वे अपनी वस्तु रही है। अपनी प्यारी वस्तु को विदा देने आज खेद अवश्य होता है। जानता हूँ कि वे पराए हो चुके है फिर भी उनको सर्वदा के लिए विदा करते दो आँसू ढलक पडते है। परन्तु आज सबसे अधिक भविष्य की चिन्ता सता रही है। अपने स्वप्नलोक के अवशेष—वे भग्नावशेष ही क्यो न हो, है तो मेरे कल्पनालोक के खँडहर—मेरे हृदय के वे सुकोमल भाव, आज वे निराश्रय इस कठोर भौतिक जगत् मे

—इस कठोर लोक में जहाँ मानवीय भावों का कोई खयाल नहीं करता, मानवीय इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का उपहास करना एक स्वाभाविक बात है।"

महाराजकुमार निश्चिन्त रहें। उनके इन सुकुमार भावों को कठोर संसार की ज़रा भी ठेस न लगेगी। ये हृदय के मर्मस्थल से निकले हैं और सहृदयों के शिरीष-कोमल अन्तस्तल में सीधे जाकर सुखपूर्वक आसन जमाएँगे।

दुर्गा कुंड, काशी
२६-७-१९३८ रामचन्द्र शुक्ल

शेष स्मृतियाँ

शान्ति की निश्वास लेता है, किन्तु वे कण उन स्मृतियो पर वहाए गए सुख-दु ख के अश्रु-वारि से पुन अकुरित होते हैं, उन नव-अकुरित कणो के आधार पर उठता है एक स्वप्नलोक और एक वार पुन. हम उन वीते दिनो की मादकता और कसक में डूवते उतराते हैं।

समय ने उपेक्षा की मनुष्य की, उसके जीवन के रगमच पर विस्मृति का प्रवाह वहा दिया, परन्तु उस प्रवाह के नीचे दवा हुआ भी वह अश्रुपूर्ण जीवन मानवीय जीवन को वनाए रखता ह। समय, मनुष्य की इच्छाओ, आकाक्षाओ, उसके उस तडपते हुए हृदय तथा महत्त्वाकाक्षापूर्ण मस्तिष्क को नष्ट कर सका, किन्तु विस्मृति के उस जीवनलोक में आज भी विचरती है उन गए वीते दिनो की सुधियाँ। जीवन को नष्ट कर सकने पर भी समय स्मृतियो के सौन्दर्य तथा मनुष्य के भोलेपन के भुलावे में आ गया। सुन्दरता, अकृत्रिम सुन्दरता और वह नैसर्गिक भोलापन. . किसे इन्होने आत्मविस्मृत नही किया। कठोर-हृदय समय भी भूल गया अपनी कठोरता को अपने प्रलयकारी स्वभाव को, और उस स्वप्नलोक में विचर कर वह स्वय एक स्मृति वन गया।

× × ×

स्मृतियाँ, मनुष्य के स्वप्नलोक के, उसके उन सुखपूर्ण दिनो के भग्नावशेष है। इस भूलोक पर अवतरित होकर भी मनुष्य नही भूल सकता है उस सुन्दर स्वर्गीय स्वप्नलोक को। वह मृगतृष्णा, उस विशुद्ध कल्पनालोक मे विचरण करने की वह इच्छा—जीवन भर दौडता है मनुष्य उस अदम्य इच्छा को तृप्त करने के लिए किन्तु स्वप्नलोक, वह तो मनुष्य से दूर खिचता ही जाता है, और उसका वह मनोहारी आकर्षक दृश्य भुलावा दे दे कर ले जाता है मनुष्य को उस स्थान पर जहाँ वह स्वर्ग, कल्पना का स्वर्ग, स्थायी नही हो सकता है। वह अचिरस्थायी स्वर्ग भग हो कर मनुष्य को आहत कर उसे भी नष्ट कर देता है।

किन्तु उस स्वप्नलोक मे, भावनाओ के उस स्वर्ग मे एक आकर्षण है, एक मनमोहक जादू है, जो मनुष्य को अपनी ओर वरवस खीचे जाता है। और उस स्वप्नलोक की वे स्मृतियाँ, उसकी वह दुखद करुण कहानी, उसके

किया। परन्तु उसकी माँग का सिंदूर, सधवावस्था का वह एकमात्र चिह्न, और उसके मस्ताने यौवन की वह मादकता, आज भी उस भग्न नगरी के वे अवशेष उनकी लाली में रँगे हुए हैं।

और तब .जहाँगीर की वह प्रथम प्रेम-कहानी, उस अनारकली का प्रस्फुटन तथा उसका कुचला जाना, विनष्ट किया जाना ; नूरजहाँ की उठती हुई जवानी तथा जहाँगीर के टूटे हुए दिल पर निरन्तर किए जाने वाले वे कठोर आघात . । जहाँगीर प्याले पर प्याला ढाल रहा था, किन्तु अपने हृदय की वेदना को, कसक को नही भूल सकता था। उनका वह अस्थायी मिलन, कुछ ही दिनो की वे सुखद घडियाँ, तथा उनका वह चिर वियोग . .। वे तडपती हुई आत्माएँ प्रेमसागर मे नहाकर भी शान्त नहीं हुईं, और आज भी छाती पर पत्थर रखे, अपने अपने विद्रोही हृदयो को दबाए हुए हैं।

शाहजहाँ की वह सुहागरात गुजर गई आँखो के सामने से। वह प्रथम मिलन, आशा-निराशा के उस कम्पनशील वातावरण में वह सुखपूर्ण रात, छलक पडा वह यौवन, बिखर गया वह सुख और निखर गई मस्ताने यौवन की वह लाली—उनने रग दिया उसके समस्त जीवन को। किन्तु अरे! यह क्या? लाली का रग उडता जाता है, वह यौवन छोड कर चल देता है, वह मस्ती लौट कर नही आती। ज्यो ज्यो जीवन-अर्क ऊँचा चढता जाता है, त्यो त्यो लाली श्वेतता मे परिवर्तित होती जाती है। और जब लुटा वह प्रेमलोक ताज सिर पर धरा था, किन्तु डाल दिया उसे प्रेयसी के चरणो मे, और लुटा दिया अपना रहा-सहा सुख भी। शाहजहाँ बेबस बैठा रो रहा था। अपने प्रेम को अपनी आँखो के सामने उसने मिट्टी में मिलते देखा। और तब उसने अपने दिल पर पत्थर रख कर अपनी प्रेयसी पर भी पत्थर जड दिये।

किन्तु सबसे अधिक मोहक था वह भौतिक स्वर्ग, जिसको जहान के शाह ने बनवाया था, जिसको जमुना ने अपने दिल के पानी मे ही नहीं सींचा था, किन्तु जिसे राज्यश्री ने भी अभिसिञ्चित किया था। वहाँ सौरभ, सगीत और सौन्दर्य का चिरप्रवाह बहता था, दुख भूल-भटके भी नहीं आते

परन्तु मेरा वह स्वप्नलोक, मेरे आश्चर्य तथा आनन्द की वस्तु, अरे! वह भग हो गया। स्वप्न मे भी भौतिक स्वर्ग को उजडते देखा, उसके खण्डहरो का करुणापूर्ण रुदन सुना, उसकी वे मर्माहत निश्वासें सुनी, और उनके साथ ही मै भी रो पडा। उजड गया है मेरा स्वप्नलोक, और आज जब होश सा होता है तो मालूम होता है कि मै स्वय भी लुट चुका हूँ।

उस प्रिय लोक की वे कोमल सुधियाँ, उसके एकमात्र अवशेष, वे सुखद या करुणाजनक स्मृतियाँ—अरे! उन्हें भी लूट ले गया यह कठोर निष्ठुर भौतिक जगत्। आज तक मै स्वप्न देखता था, उसका आनन्द उठाता था, हँसता था, रोता था, सिर पीट कर लोटता था, सिसकता था, किन्तु ये सब भाव मेरे अपने थे। उन्हें मै अपने हृदय मे, अपने दिल के पहलू में, उन्हें अपनी एकमात्र निधि समझे छिपाए रखता था। कितनी आराधना के बाद उस स्वप्नलोक का आविर्भाव हुआ था, और उस स्वप्न को देखने में, अपने उस प्यारे लोक में विचरते विचरते कितने दिन रात और कितनी रातें दिन हो गई थीं। और इस प्यार से पाले पोसे गए उस मस्ताने पागलपन के वे विचार, उन दिनो के वे भाव जब अनेक बार जी ललच कर रह जाता था, जब वासनाएँ उद्दाम होने को छटपटाती थी, जब आकाक्षाएँ मुक्त होने को तडपती थी, जब उस स्वप्नलोक में विचर विचर कर मै भी उन महान् प्रेमियो के प्रेम तथा उनके जीवन के मादक और करुणाजनक दृश्य देखता था, उनके साथ उल्लासपूर्वक कल्लोल करता था, उन्ही के दर्द से दुखी रोता था, आँसू बहाता था। किन्तु वे दिन अब स्वप्न हो गए, और उन दिनो की स्मृतियाँ—उन अनोखे दिनो की एकमात्र यादगार—भी अब मेरी अपनी न रही। उस मस्ती में उस बेहोशी में मै न जाने क्या क्या बक गया—और जो भाव अब तक मेरे हृदय मे छिपे पडे थे उनको ससार ने जान लिया, उन्हे ससार ने अपना लिया। जो आज तक मेरे अपने थे वे अब पराए हो गए। आज भी उन्हे पढ कर वे ही पुराने दिन याद आ जाते है, उस स्वप्नलोक का वह आरम्भ और उसका यह अन्त! और जब फिर सुध हो जाती है उन दिनो की तब पुन मस्ती चढती है या दर्द के मारे कसकता हूँ। परन्तु अब वे पराए हो गए तो रहे-सहे का मोह छोड कर सब कुछ खुले हाथो लुटाने निकला हूँ आज।

तो यही सही। सो अब अन्तिम विदा !

"भवन्तु शुभास्ते पन्थान"।

"रघुबीर निवास,"
सीतामऊ
२३ मार्च, १९३४

रघुबीरसिंह

पुनश्च —

बरस पर बरस बीतते गए; विदा देकर भी मैं अपनी इन "शेष स्मृतियों" को अपने पास से अलग न कर सका। जी कड़ा कर प्रयत्न करने पर भी उन्हें ससार मे एकाकी विचरने का आदेश न दे सका। और जब ससार ने तकाजा किया तो मैं इनके लिए एक अभिभावक की खोज मे निकला। आचार्य-प्रवर प०रामचन्द्र जी शुक्ल का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ कि उन्होने अपनी लिखी हुई 'प्रवेशिका' को इनके साथ भेजने का आयोजन कर दिया है। मेरी मानवीय दुर्बलता का लिहाज कर पाठकगण इस अवाछनीय देरी के लिए मुझे क्षमा करे, यही एक प्रार्थना है।

"रघुबीर निवास,"
सीतामऊ
५ मई, १९३९

रघुबीरसिंह

विजय-तोरण आदि कृतियाँ मनुष्य की इसी इच्छा के फल है। एक तरह से देखा जाय तो इतिहास भी अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की मानवीय इच्छा का एक प्रयत्न हैं। यों अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए मनुष्य ने भिन्न भिन्न प्रयत्न किए; किसी ने एक मार्ग का अवलम्बन किया, किसी ने दूसरी राह पकडी। कई एक विफल हुए; अनेको के ऐसे प्रयत्नों का आज मानव-समाज की स्मृति पर चिह्न तक विद्यमान नही है। बहुतो के तो ऐसे प्रयत्नो के खण्डहर आज भी ससार में यत्र-तत्र दिखाई देते है। वे आज भी मूक भाव से मनुष्य की इस इच्छा को देख कर हँसते हैं और साथ ही रोते भी है। मनुष्य की विफलता पर तथा अपनी दुर्दशा पर वे आँसू गिराते है। परन्तु यह देख कर कि अभी तक मनुष्य अपनी विफलता का अनुभव नही कर पाया, अभी तक उसकी वही इच्छा, उसकी वही दुराशा उसका पीछा नहीं छोडती है, मनुष्य अभी तक उन्ही के चगुल में फँसा हुआ है, वे मूकभाव से मनुष्य की इस अद्भुत मृगतृष्णा पर विक्षिप्त कर देने वाला अट्टहास करते है।

परन्तु मनुष्य का मस्तिष्क विधाता की एक अद्वितीय कृति है। यद्यपि समय के सामने किसी की भी नहीं चलती, तथापि कई मस्तिष्को ने ऐसी खूबी से काम किया, उन्होने ऐसी चालें चलीं कि समय के इस प्रलयकारी भीषण प्रवाह को भी बाँधने मे वे समर्थ हुए। उन्होने काल को सौन्दर्य के अदृश्य किन्तु अचूक पाश में बाँध डाला है, उसे अपनी कृतियों की अनोखी छटा दिखा कर लुभाया है, यो उसे भुलावा दे कर कई बार मनुष्य अपनी स्मृति के ही नहीं, किन्तु अपने भावो के स्मारको को भी चिरस्थायी बना सका हैं। ताजमहल भी मानव-मस्तिष्क की ऐसी ही अद्वितीय सफलता का एक अद्भुत उदाहरण हैं। किन्तु सौन्दर्य का वह अचूक पाश   समय के साथ मनुष्य भी उसमें बँध जाता है, समय का प्रलयकारी प्रवाह रुक जाता है, किन्तु मनुष्य के आँसुओं का सागर उमड पडता है, समय स्तब्ध होकर अब भी उस समाधि को ताक रहा है। सूरज निकलता और अस्त हो जाता है, चाद घटता और बढता है, किन्तु ताज की वह नव-नवनता आज भी विद्यमान है, शताब्दियां से बहते बाल आसू ही उस सुन्दर समाधि को धो धोकर उसे उज्ज्वल बनाए रखते हैं।

वह अंधकारमयी रात्रि थी। सारे विश्व पर घोर अंधकार छाया हुआ था, तो भी जग सोया न था। संसार का ताज, भारतीय साम्राज्य का वह जगमगाता हुआ सितारा, भारत-सम्राट् के हृदय-कुमुद का वह समुज्ज्वल चाँद आज सर्वदा के लिए अस्त होने को था। शिशु को जन्म देने में माता की जान पर आ बनी थी। स्नेह और जीवन की अन्तिम घड़ियाँ थीं, उन [illegible] दिनों का, प्रेम तथा आल्हाद से पूर्ण छलकते हुए उस जीवन का [illegible] अस्त होने वाला था। संसार कितना अचिरस्थायी है!

वह टिमटिमाता हुआ दीपक, भारत-सम्राट् के स्नेह का वह जलता हुआ चिराग़ बुझ रहा था। अब भी स्नेह बहुत था, किन्तु अकाल काल का झोंका आया, वह झिलमिलाती हुई लौ उसे सहन नहीं कर सकी। धीरे धीरे प्रकाश कम हो रहा था, दुर्दिन की काली घटाएँ उस रात्रि के अन्धकार को अधिक कालिमामय बना रही थीं, आशा-प्रकाश की अन्तिम ज्योति-रेखाएँ [illegible] के उस अन्धकार में विलीन हो रही थीं। और तब [illegible] अंधेरा ही अंधेरा था।

पूर्ण होने की आशा थी, तभी शाहजहाँ को उनकी जीवन-संगिनी ने छोड दिया। ज्योंही सुख-मदिरा का प्याला ओठो को लगाया कि वह प्याला अनजाने गिर पड़ा, चूर चूर हो गया और वह सुख-मदिरा मिट्टी में मिल गई, पृथ्वीतल में समा गई, सर्वदा के लिए अदृश्य हो गई।

हाय! अन्त हो गया, सर्वस्व लुट गया। परम प्रेमी, जीवन-यात्रा का एकमात्र साथी सर्वदा के लिए छोड़ कर चल बसा। भारत-सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी, सम्राज्ञी मुमताजमहल सदा के लिए इस लोक से विदा हो गई। शाहजहाँ भारत का सम्राट् था, जहान का शाह था, परन्तु वह भी अपनी प्रेयसी को जाने से नही रोक सका। दार्शनिक कहते हैं, जीवन एक बुदबुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी बताते हैं कि इस जीवन का संग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह में संयोग से साथ बहते हुए लकड़ी के टुकडो के साथ तथा विलग होने की कथा है। परन्तु क्या ये विचार एक संतप्त हृदय को शान्त कर सकते हैं? क्या ये भावनाएँ चिर-काल की विरहाग्नि में जलते हुए हृदय को सान्त्वना प्रदान कर सकती हैं? सासारिक जीवन की व्यथाओ से दूर बैठा हुआ जीवन-संग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण संग्राम में युद्ध करते हुए सांसारिक घटनाओ के घोर थपेड़े खाते हुए हृदयो की क्या दशा होती है, यह एक भुक्तभोगी ही बता सकता है।

× × ×

वह चली गई, सर्वदा के लिए चली गई। अपने रोते हुए प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को, अपने बिलखते हुए प्यारे बच्चो को तथा समग्र दु खी संसार को छोड कर उस अंधियारी रात में न जाने वह कहाँ चली गई। चिरकाल का वियोग था। शाहजहाँ की आँख से एक आँसू ढलका, उस सन्तप्त हृदय से एक आह निकली।

वह सुन्दर शरीर पृथ्वी की भेंट हो गया, यदि कुछ शेष था तो उनकी वह सुखप्रद स्मृति, तथा उनकी स्मृति पर उसके उस चिर वियोग पर आहें, निश्वासें और आँसू। संसार लुट गया और उसे पता भी न लगा। संसार की

वह सुन्दर मूर्ति मृत्यु के अदृश्य क्रूर हाथों चूर्ण हो गई; और उस मूर्ति के वे निर्जीव अवशेष! जगन्माता पृथ्वी ने उन्हें अपने अंचल में समेट लिया।

शाहजहाँ के वे आँसू तथा वे आहें विफल न हुईं। उन तप्त आँखों तथा उस धधकते हुए हृदय से निकल कर ये इस बाह्य जगत में आए थे। वे भी समय के साथ सर्द होने लगे। समय के ठंडे झोंकों की थपकियाँ खाकर उन्होंने एक ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण किया कि आज भी उन्हें देखकर न जाने कितने आँसू ढलक पड़ते हैं, और न जाने कितने हृदयों में हलचल मच जाती है। अपनी प्रेयसी के वियोग पर बहाए गए शाहजहाँ के ये आँसू चिरस्थायी हो गए।

सब कुछ समाप्त हो गया था, किन्तु अब भी एक आशा शेष रही थी। शाहजहाँ का सर्वस्व लुट गया था, तो भी उस [illegible] में अपनी प्रियतमा के प्रति, उस अन्तिम भेंट के समय किए गए अपने प्रण को वह नहीं भूला था। उसने सोचा कि अपनी प्रेयसी की यादगार में, भारत में ही नहीं संसार के उस चाँद की उन [illegible] हड्डियों पर एक ऐसी कब्र बनावे कि वह संसार भर के मकबरों का ताज हो। शाहजहाँ को इसी कि अपनी प्रेयसी की स्मृति को तथा उसके प्रति अपने अगाध निश्छल प्रेम को [illegible] सुन्दर स्वरूप में व्यक्त करे।

धीरे धीरे भारत की उस पवित्र [illegible] यमुना के तट पर [illegible] बनने लगा। पहले लाल पत्थर का एक चबूतरा बनाया गया [illegible]

[illegible]

[illegible]

पूर्ण होने की आशा थी, तभी शाहजहाँ को उसकी जीवन-सगिनी ने छोड दिया। ज्योही सुख-मदिरा का प्याला ओठो को लगाया कि वह प्याला अनजाने गिर पडा, चूर चूर हो गया और वह सुख-मदिरा मिट्टी में मिल गई, पृथ्वीतल में समा गई, सर्वदा के लिए अदृश्य हो गई।

हाय! अन्त हो गया, सर्वस्व लुट गया। परम प्रेमी, जीवन-यात्रा का एकमात्र साथी सर्वदा के लिए छोड कर चल बसा। भारत-सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी, सम्राज्ञी मुमताजमहल सदा के लिए इस लोक से विदा हो गई। शाहजहाँ भारत का सम्राट् था, जहान का शाह था, परन्तु वह भी अपनी प्रेयसी को जाने से नही रोक सका। दार्शनिक कहते हैं, जीवन एक बुदबुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी बताते हैं कि इस जीवन का सग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह में संयोग से साथ बहते हुए लकडी के टुकडो के साथ तथा विलग होने की कथा है। परन्तु क्या ये विचार एक सतप्त हृदय को शान्त कर सकते है? क्या ये भावनाएँ चिर-काल की विरहाग्नि मे जलते हुए हृदय को सान्त्वना प्रदान कर सकती हैं? सासारिक जीवन की व्यथाओ से दूर बैठा हुआ जीवन-सग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण सग्राम मे युद्ध करते हुए सासारिक घटनाओ के घोर थपेडे खाते हुए हृदयो की क्या दशा होती है, यह एक भुक्तभोगी ही बता सकता है।

वह चली गई, सर्वदा के लिए चली गई। अपने रोते हुए प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को, अपने बिलखते हुए प्यारे बच्चो को तथा समग्र दुःखी ससार को छोड कर उस अँधियारी रात मे न जाने वह कहाँ चली गई। चिरकाल का वियोग था। शाहजहाँ की आँख से एक आँसू ढलका, उस सन्तप्त हृदय से एक आह निकली।

वह सुन्दर शरीर पृथ्वी की भेंट हो गया, यदि कुछ शेष था तो उसकी वह सुखप्रद स्मृति तथा उसकी स्मृति पर उसके उस चिर वियोग पर आहें, निश्वास और आँसू। ससार रह गया और उसे पता भी न लगा। ससार की

फिर इस बेचारी जड लेखनी का क्या? अनेक शताब्दियाँ बीत गई, भारत मे अनेकानेक साम्राज्यो का उत्थान और पतन हुआ। भारत की वह सुन्दर कला, तथा उस महान् समाधि के वे अज्ञात निर्माणकर्ता भी समय के अनन्त गर्भ में न जाने कहाँ विलीन हो गए, परन्तु आज भी वह मकबरा खडा हुआ अपने सौन्दर्य से ससार को लुभा रहा है। समय तो उसके पास फटकने भी नही पाता कि उसकी नूतनता को हर सके, और मनुष्य . बेचारा मर्त्य, वह तो उस मकबरे के तले बैठा सिर धुनता रहा है। यह मकबरा शाहजहाँ की उस महान् साधना का, अपनी प्रेमिका के प्रति उस अनन्य तथा अगाध प्रेम का फल है। वह कितना सुन्दर है? वह कितना करुणोत्पादक है? आँखें ही उसकी सुन्दरता को देख सकती है, हृदय ही उसकी अनुपम सुकोमल करुणा का अनुभव कर सकता है। ससार उसकी सुन्दरता को देखकर स्तब्ध है, सुखी मानव जीवन के इस करुणाजनक अन्त को देख कर क्षुब्ध है। शाहजहाँ ने अपनी मृता प्रियतमा की समाधि पर अपने प्रेम की अजलि अर्पण की, तथा भारत ने अपने महान् शिल्पकारो और चतुर कारीगरो के हाथो शुद्ध प्रेम की उस अनुपम और अद्वितीय समाधि को निर्माण करवा कर पवित्र प्रेम की वेदी पर जो अपूर्व श्रद्धाञ्जलि अर्पित की उसका सानी इस भूतल पर खोजे नहीं मिलता।

× × ×

बरसो के परिश्रम के बाद अन्त मे मुमताज का वह मकबरा पूर्ण हुआ। शाहजहाँ की वर्षो की साध पूरी हुई। एक महान् यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस मकबरे के पूरे होने पर जब शाहजहाँ बडे समारोह के साथ उसे देखने गया होगा, आगरे के लिए वह दिन कितना गौरवपूर्ण हुआ होगा। उस दिन का —भारत की ही नही, ससार की शिल्पकला के इतिहास के उस महान् दिवस का—वर्णन इतिहासकारो ने कही भी नही किया है। कितने सहस्र नर-नारी आबाल-वृद्ध उस दिन उस अपूर्व मकबरे के—ससार की उस महान अनुपम कृति के—दर्शनार्थ एकत्रित हुए होगे? उस दिन मकबरे को देख कर भिन्न भिन्न दर्शको के हृदयो मे कितने विभिन्न भाव उत्पन्न हुए होगे? किसी को उस महान कृति की पूर्ति पर हर्ष हुआ होगा, किसी ने यह देख कर गौरव का अनुभव किया होगा कि उनके देश मे एक ऐसी वस्तु का निर्माण हुआ है

जिसकी तुलना करने के लिए संसार में कदाचित ही दूसरी कोई वस्तु मिले ; कई एक उस मकबरे की छवि को देख कर मुग्ध हो गए होंगे; न जाने कितने चित्रकार उस सुन्दर कृति को अंकित करने के लिए चित्रपट, रंग की प्यालियाँ और तूलिकाएँ लिए दौड पडे होंगे ; न जाने कितने कवियों के मस्तिष्क में कैसी कैसी अनोखी सूझें पैदा हुई होंगी।

परन्तु सब दर्शकों में से एक दर्शक ऐसा भी था जिसके हृदय में भिन्न भिन्न विपरीत भावों का घोर युद्ध भी हुआ था। दो आँखें ऐसी भी थीं, जो मकबरे की उस बाह्य सुन्दरता को चीरती हुई एकटक उस कब्र पर ठहरती थीं। वह दर्शक था शाहजहाँ वे आँखें थीं मुमताज के प्रियतम की आँखें। जिस समय शाहजहाँ ने ताज के उस अद्वितीय दरवाजे पर खडे होकर उस समाधि को देखा होगा उस समय उसके हृदय की क्या दशा हुई होगी, यह वर्णन करना अतीव कठिन है। उसके हृदय में शान्ति हुई होगी कि वह अपनी प्रियतमा के प्रति किए गए अपने प्रण को पूर्ण कर सका। उसको गौरव का अनुभव हो रहा होगा कि उसकी प्रियतमा की कब्र—अपनी जीवन-संगिनी की यादगार—ऐसी बनी कि उसका सानी शायद ही मिले। किन्तु उस जीवित मुमताज के स्थान पर, अपनी जीवन-संगिनी की हड्डियों पर यह कब्र—यह कब्र कैसी ही सुन्दर क्यों न हो—पाकर शाहजहाँ के हृदय में दहकती हुई चिर वियोग की अग्नि क्या शान्त हुई होगी? क्या श्वेत संगमर्मर पत्थर का यह सुन्दर अनुपम मकबरा मुमताज की मृत्यु के कारण हुई कमी को पूर्ण कर सकता था? मकबरे को देखकर शाहजहाँ की आँखों के सम्मुख उसका सारा जीवन, जब मुमताज के साथ वह सुखपूर्वक रहता था, सिनेमा की फिल्म के समान दिखाई दिया होगा। प्रियतमा मुमताज की स्मृति [illegible] उसके हृदय [illegible] स्मृतियाँ [illegible] उठी होंगी और [illegible] हृदय के [illegible] हो गए होंगे।

पाठको! [illegible] आँसू बहाए बिना नहीं [illegible] हैं कि शाहजहाँ की क्या दशा हुई होगी। [illegible]

मध्यान्ह होने ही वाला था कि उस जीवन-सूर्य को ग्रहण लग गया, और वह ऐसा लगा कि वह जीवन-सूर्य अस्त होने तक ग्रसित ही रहा। ताजमहल उस ग्रसित सूर्य से निकली हुई अद्भुत सुन्दरतापूर्ण तेजोमयी रश्मियों का एक घनीभूत सुन्दर पुज है, उस ग्रसित सूर्य की एक अनोखी स्मृति है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गईं। शाहजहाँ कई बार उस ताजमहल को देख कर रोया होगा। मरते समय भी उस सुम्मन वुर्ज में शैय्या पर पडा वह ताजमहल को देख रहा था। और आज भी न जाने कितने मनुष्य उस अद्वितीय समाधि के उद्यान मे बैठे घटो उसे निहारा करते है, और प्रेमपूर्ण जीवन के नष्ट होने की स्मृति पर, अचिरस्थायी मानवजीवन की उस करुण कथा पर रोते है। न जाने कितने यात्री दूर दूर देशो से वडे भयकर समुद्र पार कर उस समाधि को देखने के लिए खिचे चले आते है। कितनी उमगो से वे आते है, परन्तु उसासें भरते हुए ही वे वहाँ से लौटते है। कितने हर्ष और उल्लास के साथ वे आते है, किन्तु दो बूँद आँसू वहा कर और हृदय पर दु ख का भार लिए ही वे वहाँ से निकलते है। प्रकृति भी प्रतिवर्ष चार मास तक इस अद्वितीय प्रेम के भग होने की करुण स्मृति पर रोती है।

मनुष्य जीवन की, मनुष्य के दु खपूर्ण जीवन की—जहाँ मनुष्य की कई वासनाएँ अतृप्त रह जाती है, जहाँ मनुष्य के प्रेम के वधन बँधने भी नही पाते कि काल के कराल हाथो पड कर टूट जाते है,—मनुष्य के उस करुण जीवन की स्मृति—उसकी अतृप्त वासनाओ, अपूर्ण आकाक्षाओ तथा खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि—आज भी यमुना के तीर पर खडी है। शाहजहाँ का वह विस्तृत साम्राज्य, उसका वह अमूल्य तख्तताऊस, उसका वह अतीव महान् घराना, शाही ज़माने का चकाचौंध कर देने वाला वह वैभव, आज सब कुछ विलीन हो गया—समय के कठोर झोको मे पडकर वे सब आज विनष्ट हो चुके है। ताजमहल का भी वह वैभव, उसमे जड़ हुए वे वहुमूल्य रत्न भी न जाने कहाँ चले गए, किन्तु आज भी ताजमहल अपनी सुन्दरता से समय को लुभा कर उसे भुलावा दे रहा है, मनुष्य को क्षुब्ध कर उसे रुला रहा है, और

एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ

एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ

उसने नए प्रेमी की ओर आग्रहपूर्ण दृष्टि डाली, और अकबर . वह तो अपनी प्रेयसी की आँखों के इशारे पर नाच रहा था।

× × ×

यौवन-मदिरा को पीकर उन्मत्त अकबर राज्यश्री को पाकर अब अधिक मस्त हो गया। आँखों में इस दुहरी मस्ती की लाली छा गई। इतने दिनों के घोर परिश्रम तथा कठिन आपत्पूर्ण जीवन के बाद अपनी प्रेमिका राज्यश्री को पाकर अकबर ऐश्वर्य-विलास के लिए लालायित हो उठा था। वह ढूंढने लगा एक ऐसे अज्ञात निर्जन स्थान को जहाँ वह अपनी उठती हुई उमगो और बढ़ती हुई कामनाओं को स्वच्छन्द कर सके।

अकबर का हृदय एक मानव-युवा का हृदय था। प्रारम्भिक दिनों की तपस्या उसकी उमडती हुई उमगो को नहीं दबा सकी थी, उन्हें शान्त नहीं कर सकी, विलास-वासना की ज्वाला अब भी अकबर के दिल में जल रही थी, केवल उसकी ऊपरी सतह पर सयम की राख चढ गई थी। परन्तु राज्यश्री की प्रेम-मदिरा ने, उसकी तिरछी नजर की इस चोट ने उस अग्नि को पूर्ण प्रज्वलित कर दिया। धू-धू करके वह धधक उठी। अकबर का रहा-सहा सयम भी इस भीषण ज्वाला की लपेटो में पड कर भस्म हो गया। पतगे की नाईं अब अकबर भी विलास की दीप-शिखा के आसपास मडराने लगा।

महान् साम्राज्य की सत्ता तथा सफलता के उस अनुकूल वातावरण में अकबर पर खूब गहरा नशा चढा। उसी नशे मे चूर राज्यश्री का प्यारा अकबर इस भौतिक ससार को छोड कर अब स्वप्न-ससार मे विचरने लगा। राज्यश्री के हाथो युवा अकबर ने खूब छक कर पी थी वह मादक मदिरा। अब उसीकी गोद म बेहोश पड़ा पडा एक स्वप्न देखने लगा। वह स्वप्न क्या था, भारतीय स्थापत्य-कला के इतिहास की एक महान् घटना थी, मध्यकालीन-भारतीय-गगन का एक देदीप्यमान धूमकेतु था। धूमकेतु की नाईं अनजाने ही वह स्वप्न आया और उसी की तरह वह भी एकाएक ही अदृष्ट हो गया। एकाएक विलीन हो गया, किन्तु फिर भी ससार म अपनी अमिट स्मृति छोड गया। जगत् के भूतल पर आज भी उस स्वप्न की कुछ स्मृतियाँ यत्र-तत्र

अंकित हैं। ये स्मृतियाँ इतनी सुन्दर हैं, उनका रहा-सहा, छिन्न-भिन्न, जर्जरित स्वरूप भी इतना हृदयग्राही है कि उनको देख कर ही मनुष्य का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और कल्पना-शक्ति के सहारे उन परित्यक्त खण्डहरो के पुरातन प्राचीन वैभव पूर्ण दिनो की याद कर उनके उस स्मृति-ससार की सैर करने को दौड पड़ता है। जब इन भग्न अवशेषो का, इन परित्यक्त ठुकराई हुई स्मृतियो का स्वरूप भी इतना आकर्षक है तो वह स्वप्न कितना मनोरजक, सुन्दर तथा उन्मादक रहा होगा,—इसका पता लगाना मानवीय कल्पना के लिए भी एक असम्भव अनहोनी बात है। एक अन्तर्हित स्वप्न की मूक दर्शिका, उस अद्भुत नाटक का वह अनोखा रगमच, उन परित्यक्ता नगरी से अधिक सुन्दर तथा अधिक शोचनीय वस्तु भारत में ढूंढे नही मिलेगी।

उस सुखद स्वप्न का वर्णन करना, उसको चित्रित करना एक कठिन समस्या है। उस स्वप्न की स्मृतियाँ इतनी थोडी है, उन दिनो की याद दिलाने वाली सामग्री का इतना अभाव है कि रही-सही सामग्री पर समस्त स्वप्न का वह अद्भुत विशाल भवन निर्माण करना असम्भव हो जाता है। आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दर्शक भी, उसका पूरा-पूरा जीता-जागता वृतान्त नही लिख सके। जिस किसी ने स्वय यह स्वप्न देखा था, उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया, वह आश्चर्य-चकित हो विस्फारित नेत्रो से देखता ही रहा, एकटक ताकता रहा। और जब नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तब नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी मे वह चचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके बिना उस वर्णन मे कोई भी आकर्षण या जीवन नही रहता है।

× × ×

स्वप्न था। मादकता की लहर थी। जोरो से नशा चढ रहा था। ऐश्वर्य-विलास के भयकर उन्मत्त प्रवाह मे अम्बर बहा जा रहा था। अम्बर एकबारगी स्वप्न-ससार मे विचरण करने लगा। लक्ष्मी की गोद मे पला था, उसे किस बात की कमी प्रतीत होती? फिर भी एक बात बहुत अखरती थी अपनी गोद सूनी देख कर उसे दुख अवश्य होता था। उसने अनेकानेक

प्यारे-प्यारे सुकोमल [illegible] को किसी कठोर मृत्यु [illegible] उसका हृदय विकल हो उठता था। [illegible] अतुल निधि में [illegible] कर वह अपना सिर पीट लेता था, अपनी विवशता पर उसे रोना आता था, और वही खारा पानी बनकर आँखों की राह बह जाता था।

सागर लहलहा रहा था, उसके पूर्वी किनारे एक पहाड़ी पर एक सन्त संसार से विरक्त बैठे ईश्वर-भक्ति में गीत गाने में लीन हो रहे थे। अकबर ने सोचा कि कुछ पुण्य इकट्ठा कर ले, ईश्वर की दी हुई [illegible] शक्तियों को आपस में लड़ा कर कुछ लाभ उठावे। दुर्भाग्य एवं [illegible] का सामना करने के लिए उसने स्वर्गीय पुण्य को अपनी ओर मिलाने की सोची। अपने विगत जीवन में एकत्रित पुण्य पर भरोसा न कर वह दूसरों द्वारा संचित पुण्य की भीख माँगने के लिए हाथ फैलाए निकला।

एक अद्भुत दृश्य था। जो अकबर सहस्रों साधु-संन्यासियों को राजा बना सकता था, वही आज एक अर्धनग्न तपस्वी के पास भीख माँगने आया। राज्यश्री के लाडिले अकबर ने तप के सम्मुख सिर झुकाया, तपस्या के चरणों में राज्यश्री ने साष्टांग प्रणाम किया। जिस तपस्या ने सांसारिक जीवन छुड़वाया, भौतिक सुखों, मानवीय कामनाओं तथा ऐश्वर्य-विलास की बलि दिलवाई, उसी तपस्या ने अपना संचित पुण्य भी लुटा दिया। जब राज्यश्री अंचल फैलाए भीख माँगने आई तब तो तपस्वी ने उसकी झोली भर दी। अकबर को मुँह-माँगा वरदान मिला। मनोनुकूल भिक्षा पाकर अकबर लौट गया, शीघ्र ही सलीम का जन्म हुआ, काल की एक न चली अदृष्ट के अभेद्य कवच को पुण्य के पैने शरों ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

× × ×

अकबर ने पुण्य तथा तपस्या की शक्ति देखी किन्तु उसकी महत्ता का अनुभव नहीं कर सका। राज्यश्री की गोद में सुख की नींद सोते हुए अकबर को तप अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। उन्मत्त अकबर की लाल लाल आँखें शुद्ध श्वेत तप से निकलती हुई आभा को नहीं देख पाईं। साधु के संचित पुण्य को पाकर अकबर का मनोरथ सिद्ध हो गया, परन्तु वह इस बात को नहीं

समझ पाया कि यह पुण्य साधु की कठोर तपस्या का फल था; उसने उस स्थान को ही पवित्र समझा। अकबर ने सोचा कि "क्यो न मैं इस पवित्र स्थान पर उस पुण्य भूमि मे निवास कर, पुण्य तथा राज्यश्री, दोनो की पूर्ण सहायता प्राप्त करूँ जिससे अपनी समस्त वाञ्छाएँ पूर्ण हो सके"। जहाँ एक बीहड़ वन था, वही अकबर ने एक सुन्दर नगरी निर्माण करने की सोची।

निराशा के घोर अधकार मे एकाएक बिजली कौंधी और उतनी ही शीघ्रता के साथ विलीन हो गई। अकबर ने तप और सयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गई। पुन सर्वत्र भौतिकता का अन्धकार छा गया, किन्तु इस बार उसमे आशा की चाँदनी फैली। अकबर चपला की उस चमक को देख कर चौंका था, उस आभा की ओर आकृष्ट हो कर उस ओर लपका, परन्तु कुछ ही आगे बढ कर लड़खडाने लगा, पुनः मूर्छित हो गया। गिरते हुए अकबर को राज्यश्री ने सम्हाला। यौवन, धन और राजमद से उन्मत्त अकबर आशा की उस चाँदनी को पाकर ही सन्तुष्ट हो गया; एक बार आँख खोल कर उसे निहारा और राज्यश्री की ही गोद में आँखे बन्द कर पडा रहा। तप और सयम की वह चमक अकबर का नशा नही उतार सकी, उसकी ओर लपक कर अकबर अब अधियारे में न रह कर आशा की छिटकी हुई चाँदनी के उस समुज्ज्वल वातावरण में जा पहुँचा था।

× × ×

अब अकबर पर एक नई धुन सवार हुई। वह सोचने लगा कि उस पवित्र स्थान मे एक नया शहर बसावे, एक ऐसी सुन्दर नगरी का निर्माण करे जहाँ ऐश्वर्य और विलास की समस्त सामग्री एकत्रित हो, जो नगरी सौन्दर्य और वैभव मे भी अद्वितीय हो। भावना की एक लहर उठ रही थी, स्वप्न-संसार मे विचरते हुए अकबर के मस्तिष्क की एक तरंग थी। राज्यश्री के अनन्य प्रेमी अकबर ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिए अपनी प्रेयसी का आह्वान किया। अलाउद्दीन के अद्भुत दीपक के भूत की तरह राज्यश्री ने भी अकबर की इच्छा को शीघ्रातिशीघ्र पलक मारते ही पूर्ण करने का यत्न किया।

ससार की उस अनोखी जादूगरनी ने अपनी जादू भरी लकडी घुमाई, और अल्प काल में ही आश्चर्यजनक तेजी से बढने वाले उस आम के पौधे की नाई उस बीहड वन के स्थान पर एक नगरी उठने लगी। उन्मत्त अकबर की मस्ती ने, उसकी आँखो की लाली ने, उस नगरी को लाली प्रदान की। मस्ताने अकबर के हाथो में यौवन-मदिरा का प्याला छलक पडा, कुछ मदिरा ढलक गई और उन्हीं कुछ छलकी हुई बूँदो ने सारी नगरी को अपने रग में रग दिया। जहाँ दुर्गम पहाडियाँ थी वहीं लाल भवनो की सुन्दर कतारें देख पडने लगी, उन पहाडियो की मस्ती फूट पडी, उनके भी उन ऊबड-खाबड कठोर शुष्क कपोलो पर यौवन की लाली झलकने लगी।

सारी नगरी लाल है। मुग़ल साम्राज्य के यौवन की लाली, अकबर के मस्ताने दिनो की वह अनोखी मादकता, आज भी इन छिन्न-भिन्न खडहरो मे दिखाई देती है। अनन्तयौवना राज्यश्री ने इस नगरी का अभिषेक किया था, यही कारण है कि आज भी यौवन की लाली ने, स्वप्न की उस मादकता ने इन पत्थरो का साथ नही छोडा। मुगल साम्राज्य के प्रारम्भिक दिनो का वह मदमाता यौवन समय के साथ ही नष्ट हो गया, तथापि आज भी इन रक्तवर्ण महलो को देख कर उन यौवनपूर्ण दिनो की सुध आ जाती है। ज्यो ज्यो मुगल-साम्राज्य का यौवन-मद उतरता गया त्यो त्यो लाली के स्थान पर प्रौढता की उज्ज्वल आभा रूपी श्वेतता का दौर दौरा बढता गया। मुगल-साम्राज्य की प्रौढता के, उसके आते हुए वृद्धापकाल के द्योतक वे श्वेत केश प्रथम वार शाहजहाँ के शासनकाल मे दिखाई दिए। दिल्ली के किले के वे श्वेत महल, आगरा का वह प्रसिद्ध उज्ज्वल मोती, और उसी का वह अनोखा ताज, मुगल साम्राज्य के ढलकते हुए यौवन मे निकले हुए ही कुछ श्वेत केश हैं।

पानी की तरह धन बहा। श्री से सींचे जाने पर कठोर नीरस ऊसर भूमि मे भी अकुर फूटा। वे वीरान परित्यक्ता पहाडियाँ भी अब सरस हुईं, उनका पाषाण हृदय भी पिघल गया। राज्यश्री की जादू भरी लकडी घूमी और उन उजाड पहाडियो मे धीरे धीरे सुन्दर लाल लाल महलो का एक उद्यान दिखाई देने लगा, और उस उद्यान मे खिला एक सुन्दर सुगठित श्वेत पुष्प।

यो उस स्वच्छन्द युवा सम्राट ने उन्मत्त होकर अपनी कामनाओ तथा

आकांक्षाओं को उड़ान कर दिया। उसकी विलास-वासना उसके लास्य-लीला करने लगी। अपने सुख-स्वप्न को सच्चा कर दिखाने के लिए सम्राट् ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा; और इस तरह संसार को, और विशेषतया भारत को कला का एक ऐसा अद्वितीय दृश्य दिखाया, जिसकी भग्नावशेष स्मृतियों को देख कर आज भी संसार अघाता नहीं है।

वह स्वप्न था, और उसी स्वप्न में उस स्वप्नलोक की रचना हुई थी। स्वप्न के अन्त के साथ ही उस लोक का भी पतन हुआ। परन्तु आज भी स्वप्न की, उस स्वप्नलोक की, कुछ स्मृतियाँ विद्यमान हैं। आओ! वर्तमान को सामने से हटाने वाली विस्मृति-मदिरा का प्याला ढाले, और उसे पीकर कुछ काल के लिए इन भग्नावशेषों में घूम घूम कर उस स्वप्नलोक में विचरे। तब कल्पना के उन सुनहले परों पर बैठे उड़ चलेंगे उस लोक में जहाँ स्वप्न अकबर विचरता था।

चलो! सैर कर आवें उस लोक की जहाँ राजनय की कुछ टलकी हुई बूंदों ने सुन्दर स्वरूप ग्रहण किया; जहाँ प्रथम बार मुग़ल साम्राज्य का यौवन फूटा, और जहाँ मुगल साम्राज्य तथा मुस्लिम सभ्यता ने भारतीय सभ्यता पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यही वह लोक है जहाँ एक बढ़ते हुए साम्राज्य तथा नवयुवक सम्राट् की कामनाओं को तृप्त करने के लिए राजश्री इठलाती थी। यही अकबर के हृदय की विशालता पर मुग्ध होकर समस्त भारत ने एक बार उसके चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पण की तथा उसे अकबर ने सस्नेह विनीत भाव से ग्रहण किया और भारतीय सभ्यता के सुघड़ उन आभूषणों से नवजात नगरी का शृङ्गार किया।

दिल पर पत्थर रख कर उसकी वर्तमान दशा को भूल कर चलो उस लोक में उस काल में, जब उस नगरी को सजाने में, उसको सुशोभित करने में ही भारत-सम्राट् रत रहता था; जिसका शृङ्गार करने में ही अपनी सारी यौवन, अपना समस्त धन एवं सारा कला-कौशल उसने व्यय कर दिया। अल्पकाल में ही सारा संसार इस नगरी पर मुग्ध हो गया और इस सुन्दर

नगरी की भेंट करने के लिए अपनी उत्तमोत्तम वस्तुएँ लेकर सब कोई दौड पडे। और उस नगरी मे घूम कर उन १५ वर्षो के बहुत कुछ इतिहास का, उस युग के महान् महान् व्यक्तियो का थोडा बहुत पता लग जाता है। अकबर पर राजमद चढा हुआ था, वह स्वप्नलोक मे विचरता था, किन्तु फिर भी वह अपने साथियो को नही भूला। वह ऐश्वर्य और विलास के सागर मे गोते लगाने को कूद पडा और साथ ही अपने मित्रो को भी खीच ले गया। सीकरी अकबर की ही नही, किन्तु तत्कालीन भारत की एक स्मृति है।

× × ×

ससार का सबसे बडा विजय-तोरण, वह बुलन्द दरवाज़ा, छाती निकाले दक्षिण की ओर देख रहा है। इसने उन मुगल योद्धाओ को देखा होगा जो सर्वप्रथम मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए दक्षिण की ओर बढे थे। उसने विद्रोही औरगज़ेब की उमडती हुई सेना को घूरा होगा, और पास ही पराजित दारा के स्वरूप मे अकबर के आदर्शो का पतन भी उसे देख पडा होगा। अन्तिम मुगलो की सेनाएँ भी इसी के सामने होकर निकली होगी—वे सेनाएँ जिनमें वेश्याएँ, नर्तिकाएँ और स्त्रियाँ भी रणक्षेत्र पर जाती थी और रणक्षेत्र को भी विलास-भूमि मे परिणत कर देती थी। यदि आज यह दरवाज़ा अपने सस्मरण कहने लगे, पत्थरो का यह ढेर बोल उठे तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जावे और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियाँ ठीक की जा सके।

यह एक विजय-तोरण है, खानदेश की विजय का एक स्मारक है। किन्तु यदि देखा जाय तो यह दरवाज़ा अकबर द्वारा भारतीय सभ्यता पर प्राप्त की गई विजय का ही एक महान् स्मारक है। अकबर ने अपने हृदय की विशालता को इस दरवाज़े की विशालता मे व्यक्त किया है।

"यह ससार एक पुलिया है, इसके ऊपर से निकल जा, किन्तु इस पर घर बनाने का विचार मन में न ला। जो यहां एक घटा भर भी ठहरने का इरादा करेगा वह चिरकाल तक यहां ही ठहरने को उत्सुक हो जावेगा। सासारिक जीवन तो एक घडी भर का ही है, इसे ईश्वर-स्मरण तथा भगवद्भक्ति में

विता, ईश्वरोपासना के अतिरिक्त सब कुछ व्यर्थ है, सब कुछ असार है।"

सासारिक जीवन की असारता सम्बन्धी इन पक्तियो को एक विजय-तोरण पर देख कर कुतूहल होता है। अकबर मानव जीवन के रहस्य को ढूंढ़ निकालने तथा दो पूर्णतया विभिन्न सभ्यताओ का मिश्रण करने निकला था, किन्तु वह वास्तविक वस्तु तक नही पहुँच पाया, मृगतृष्णा के जल की नाई उन्हें ढूंढता ही रहा और उसे अन्त तक उनका पता न मिला। भोले भाले बालक की तरह उसने हाथ फैलाकर अनजाने ही कुछ उठा लिया ; वह सोचता था कि उसे उस रहस्य का पता लग गया, वह इष्ट वस्तु को पा गया , किन्तु जिसे वह रत्न समझे बैठा था वह था कांच का टुकडा। सारे जीवन भर अकबर यही सोचता रहा कि उसे इच्छित रत्न प्राप्त हो गया और उसी खयाल से वह आनन्दित होता था।

जीवन भर अकबर भारतीय तथा मुस्लिम सभ्यताओ के सम्मिश्रण का स्वप्न देखता रहा। यह एक सुखद स्वप्न था। अत जब अकबर के उस मानव-जीवन-स्वप्न का अन्त हुआ तब सभ्यता की यह स्वप्निल विजय भी नष्ट हो गई और वह सम्मिश्रण केवल एक स्वप्नवार्ता, नानी की एक कहानी मात्र बन गई। बुलन्द दरवाज़ा उसी सुखद स्वप्न की एक स्मृति है , एव इसे विजय-तोरण न कह कर "स्वप्न-स्मारक" कहना अधिक उपयुक्त होगा।

उस दरवाज़े मे होकर, उस स्वप्न को याद करते हुए, हम एक आगन में जा पहुँचते हैं सामने ही दिखाई पडती है एक सुन्दर श्वेत कब्र। यह उस साधु की समाधि है जिसने अपने पुण्य को देकर मुग़ल घराने को आरम्भ में ही निर्मूल होने से बचाया था। अपनी सुन्दरता के लिए, अपनी कला की दृष्टि से यह एक अनुपम अद्वितीय कृति है। समस्त उत्तरी भारत के भिन्न भिन्न धर्मानुयायी हिन्दू-मुसलमान आदि प्रतिवर्ष इस क़ब्र पर खिचे चले आते है , वे सोचते है कि जिस व्यक्ति ने जीते जी अकबर को भिक्षा दी, क्या उसी व्यक्ति की आत्मा स्वर्ग मे बैठी उनकी छोटी सी इच्छा भी पूर्ण न कर सकेगी ?

× × ×

और सामने ही है वह मसजिद, जो यद्यपि पूर्णतया मुस्लिम ढग की है,

और जो अपनी सुन्दरता के लिए भी बहुत प्रख्यात नहीं है, तथापि वह एक ऐसी विशेषता के लिए विख्यात है जो किसी दूसरे स्थान को प्राप्त नहीं हुई। इसी मसजिद ने एक भारतीय मुसलमान सम्राट् को उपदेशक के स्थान पर खडा होकर प्रार्थना करते देखा था। भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास मे यह एक अनोखी अद्वितीय घटना थी, और वह घटना इसी मसजिद में घटी थी।

अकबर को सूझी थी कि इस्लाम धर्म की असहिष्णुता को मिटा दे, उसकी कठोरता को भारतीय सहिष्णुता की सहायता से कम कर दे। क्यो न वह भी प्रारम्भिक खलीफाओ के समान स्वय धर्माधिकारी के उच्चासन पर खडा होकर सच्चे मानव धर्म का प्रचार करे उसके साथी अबुल फजल और फैजी ने उसके आदर्श को सराहा। और उस दिन जब पूरी पूरी तैयारियाँ हो गई तब अकबर पूर्ण उत्साह के साथ उस उच्चासन पर चढ कर प्रार्थना करने लगा —

"उस जगत्-पिता ने मुझे साम्राज्य दिया। उसने मुझे बुद्धिमान्, वीर और शक्तिशाली बनाया। उसने मुझे दया और धर्म का मार्ग सुझाया, और उसी की कृपा से मेरे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। कोई भी मानवीय जिह्वा उस परमपिता के स्वरूप, गुणों आदि का पूरा पूरा वर्णन नहीं कर सकती। अल्लाहो अकबर! ईश्वर महान् है।"

परन्तु   आह! अपने सम्मुख, अपने चरणो मे, हजारो पुरुषो को एक साथ ही उस परमपिता की उपासना मे रत, नतमस्तक होते देख कर अकबर स्तब्ध हो गया। अपने उस नए पद की महत्ता का अनुभव कर अकबर अवाक् रह गया, उसका गला भर आया, आखे डबडबा गई। आवेश के मारे कपडे मे अपना मुँह छिपा कर वह उस उच्चासन से उतर पडा। अकबर के अधूरे सदेश को काजी ने पूरा किया। अकबर ने स्वप्न देखा था, जिसमें वह एक महात्मा तथा नवीन धर्मप्रचारक की तरह खडा उपदेश दे रहा था और उसकी समस्त प्रजा स्तब्ध खडी उसके सदेश को एकाग्रचित्त से सुन रही थी। किन्तु जीवन की वास्तविकता की टक्कर खाकर उसका वह स्वप्न भग हो गया, उसे प्रथम बार ज्ञान हुआ कि स्वप्नलोक भौतिक ससार से दूर

सहानुभूति करता है उस दुखिया माता के साथ? कौन उस निरीह बच्चे की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करने का कष्ट उठाता है? करुणा...... करुणा, संसार ने तो उसे राज्यश्री की उन्मत्त लाली में, उसके लिए बलिदान किए गए पुरुषों के गरम गरम तपतपाते खून में डुबो दिया।

× × ×

दीवान खास के पास ही वह चौकोर चबूतरा है, जहाँ बादशाह अपनी सभासदों तथा अपने प्रेमी मित्रों के साथ जीवित गोटों का चौसर खेला करते थे। प्रत्येक गोट के स्थान पर एक सुन्दर नवयुवा दासी खड़ी रहती थी। पूर्णिमा की रात को जब समस्त संसार पर शीतल चांदनी छिटकी होगी, उस समय उस स्थान पर चौसर का वह खेल कितना मादक रहा होगा। राजमद की मस्ती पर मदिरा की मादकता, और उन पर यह दृश्य......ओह! कुछ खयाल तक नहीं हो सकता उस खेल के आनन्द का तथा उस स्थान के उस मस्ताने वातावरण का। अकबर के मदमाते मस्तिष्क की यह एक अनोखी सूझ थी। जहाँ तक पढ़ा या सुना है, संसार के इतिहास में अकबर के अतिरिक्त किसी ने भी जीवित गोटों का ऐसा चौसर नहीं खेला।

यों तो प्रत्येक शासक अपनी प्रजा के जीवन उनकी स्वतन्त्रता तथा उसके समस्त कार्यों के साथ खिलवाड़ किया करता है। एकाध शासक ही ऐसा होगा जिसे यह मालूम हो कि उसकी आज्ञाओं का पालन करने में शासितों पर क्या क्या बीतती होगी। जिन शासकों ने कभी भी आज्ञापालन का अभ्यास नहीं किया जिन्होंने अपने बाल्यकाल से ही मानव जीवन के साथ खिलवाड़ किया उनके लिए मानव जीवन केवल आमोद-प्रमोद की वस्तु है। वे दूसरों के जीवन के साथ जी भर कर खेलते हैं पर उन बेचारों को यह मालूम नहीं कि उनका खिलवाड़ शासितों के लिए कितना भयकर होता है।

परन्तु अकबर का यह खिलवाड़ उतना ही अहितकर था, जितनी कि स्वप्न की लड़ाई होती है। संसार के लिए तो वह एक स्वप्न ही था। कुछ ही वर्षों के लिए और तब भी इनी-गिनी बार ही संसार ने यह दृश्य देखा। वह खेल एक अतीत स्मृति हो गई। अकबर के स्वप्नलोक का एक अनोखा दृश्य था।

स्वप्नलोक के रगमच पर होने वाले नाटको की एक विशिष्ट वस्तु थी। अकबर की रगरेलियो के विस्तृत आयोजन की एक अद्वितीय मनोरजक विशेषता थी।

× × ×

और इस स्वप्नलोक मे एक स्थान वह भी है, जहाँ अकबर अपनी सारी श्रेष्ठता अपने सारे सयानेपन को भूल कर कुछ समय के लिए आँखमिचौनी खेलने लगता था। अकबर के वक्ष स्थल मे भी एक छोटा सा हृदय धुकधुकाता था। अपने महान् उच्चपद की महत्ता का भार निरन्तर वहन करते करते कई वार वह शैथिल्य का अनुभव करता था। आठो पहर सम्राट रह कर, मानव जीवन से दूर गौरव और उच्च पद के ऊसर रेगिस्तान मे पडा पडा अकबर तडपता था, उसका हृदय उन कृत्रिम वन्धनो से जकडा हुआ फडफडाता था। इसी कारण जब उस छोटे हृदय में विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तब कुछ समय के लिए अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रख कर वह सम्राट् भी वालको के उस सुखपूर्ण भोले भाले ससार में घुस पडता था, जहाँ मनुष्य मात्र, चाहे वह राजा हो या रक, एक समान हैं और सब साथ ही खेलते हैं। वालको के साथ खेल कर अकवर मानव जीवन के कठोर सत्यो के साथ आँखमिचौनी खेलता था। अकवर को स्वप्नलोक मे भी खेल सूझा। यो वालको के साथ उनके उस अनोखे लोक मे विचर कर अकवर वह जीवन-रस पीता था, जिसके विना साम्राज्य के उस गुरुतम भार से दव कर वह कभी का इस ससार से विदा हो गया होता।

× × ×

स्वप्नससार का वह स्वप्नागार—वह ख्वाबगाह—एक अनोखा स्थान है। स्वप्नलोक मे रहते हुए भी अकवर की स्वप्न देखने की लत नहीं छूटी। कल्पनालोक मे विचरने तथा स्वप्न देखने की लत एक वार पडी हुई किसकी छूटी है? यह वह मदिरा है जिसका प्याला एक वार मुंह से लगने पर कभी भी अलग नहीं होता, कभी भी खाली रहने नहीं पाता। स्वप्नलोक मे पडा पड़ा अकवर वास्तविक ˆ स्वप्न देखता था। इस लोक मे मस्त पडा

था, किन्तु वह सम्राट् था, वास्तविक ससार को किस प्रकार भुलाता ? भौतिक ससार के इन कार्यो ने उसे निरतर लगे रहना पड़ता था। ऐश्वर्य और विलासिता के सागर मे ग़र्क रहते हुए भी उसे एक विशाल साम्राज्य पर शासन करना पडता था। साम्राज्य पर शासन करना तथा विस्मृति-मदिरा पीकर ऐश्वर्य-सागर मे गोते लगाना दो ध्रुवो की नाई विभिन्न है। अतएव जब अकबर की इच्छा हुई कि वह प्रेम-महोदधि मे गोता लगावे, कुछ काल के लिए विस्मृति-लोक मे घूमे तब तो उसने सासारिक बातो को, साम्राज्य-सचालन के कार्य को, एक स्वप्न समझा। स्वप्नलोक के स्वप्नागार में पडा अकबर साम्राज्य-सचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य-कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।

× × ×

सीकरी का सीकर सूख गया, उसके साथ ही मुस्लिम साम्राज्य का विशाल वृक्ष भी भीतर ही भीतर खोखला होने लगा। करोड़ो पीडितो के तपतपाए आँसुओ से सीचे जाकर उस विशाल वृक्ष की जड़ें मुर्दा होकर ढीली हो गई थी, अत जब अराजकता, विद्रोह तथा आक्रमण की भीषण आँधियाँ चलने लगी, युद्ध की चमचमाती हुई चपला चमकी, पराजय रूपी वज्रपात होने लगे तब तो यह साम्राज्य-रूपी वृक्ष उखड़ कर गिर पडा, टुकड़े टुकडे होकर बिखर गया, और उसके अवशेष, विलास और ऐश्वर्य का वह भव्य ईंधन, असहायो के निश्वासो तथा शहीदो की भीषण फुकारो से जल कर भस्म हो गए। जहाँ एक सुन्दर वृक्ष खडा था, जो ससार में एक अनुपम वस्तु थी, वहाँ कुछ ही शताब्दियो मे रह गए, गम्भीर गह्वर, उस वृक्ष के कुछ अधजले झुलसे हुए यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े तथा उस विशाल वृक्ष की वह मुट्ठी भर भस्म। सीकरी के खण्डहर उसी भस्म को रमाए खडे है।

× × ×

सब कुछ सपना ही तो था देखते ही देखते विलीन हो गया। दो आँखो की यह सारी करामात थी। प्रथम तो एकाएक झोका आया, अकबर मानो सोते से जग पडा, स्वप्नलोक को छोड कर भौतिक ससार में लौट आया।

स्वप्नलोक के रगमच पर होने वाले नाटको की एक विशिष्ट वस्तु थी। अकबर की रगरेलियो के विस्तृत आयोजन की एक अद्वितीय मनोरजक विशेषता थी।

× × ×

और इस स्वप्नलोक में एक स्थान वह भी है, जहाँ अकबर अपनी सारी श्रेष्ठता, अपने सारे सयानेपन को भूल कर कुछ समय के लिए आँखमिचौनी खेलने लगता था। अकबर के वक्ष स्थल मे भी एक छोटा सा हृदय धुकधुकाता था। अपने महान् उच्चपद की महत्ता का भार निरन्तर वहन करते करते कई वार वह शैथिल्य का अनुभव करता था। आठो पहर सम्राट रह कर, मानव जीवन से दूर गौरव और उच्च पद के ऊसर रेगिस्तान में पडा पडा अकबर तडपता था, उसका हृदय उन कृत्रिम वन्धनो से जकडा हुआ फडफडाता था। इसी कारण जव उस छोटे हृदय मे विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तव कुछ समय के लिए अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रख कर वह सम्राट् भी वालको के उस सुखपूर्ण भोले भाले ससार मे घुस पडता था, जहाँ मनुष्य मात्र, चाहे वह राजा हो या रक, एक समान है और सब साथ ही खेलते है। वालको के साथ खेल कर अकबर मानव जीवन के कठोर सत्यो के साथ आँखमिचौनी खेलता था। अकबर को स्वप्नलोक मे भी खेल सूझा। यो वालको के साथ उनके उस अनोखे लोक मे विचर कर अकबर वह जीवन-रस पीता था, जिसके विना साम्राज्य के उस गुरुतम भार से दव कर वह कभी का इस ससार से विदा हो गया होता।

× × ×

स्वप्नससार का वह स्वप्नागार—वह ख्वाबगाह—एक अनोखा स्थान है। स्वप्नलोक मे रहते हुए भी अकबर की स्वप्न देखने की लत नहीं छूटी। कल्पनालोक मे विचरने तथा स्वप्न देखने की लत एक वार पडी हुई किसकी छूटी है? यह वह मदिरा है जिसका प्याला एक वार मुंह मे लगने पर कभी भी अलग नही होता, कभी भी खाली रहने नही पाता। स्वप्नलोक मे पडा पडा अकबर वास्तविक जीवन का स्वप्न देखता था। उस लोक मे मग्न पडा

वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खण्डहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हे उन करोडो मनुष्यो की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासको, धनिको तथा विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थीं। आज भी उन भव्य खण्डहरो में उन पीड़ितो का रुदन सुनाई देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पडते हैं। अपने उस बाल-वैधव्य को स्मरण कर यह परित्यक्ता नगरी उसासें भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासें इतनी विषैली है कि उनको सहन करना कठिन है। इन्ही आहो की गरमी तथा विष से मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर टलके हुए आँसुओ के उस तप्त प्रवाह मे रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।

× × ×

एक नजर तो देख लो इस मृत शरीर को, अकबर के उस भग्न स्वप्न-ससार के उन सुनसान रगमच को, अकबर के स्वप्नलोक के उन टूटे फूटे अवशेषो को। अकबर के ऐश्वर्य-विलास के इस लोक को उजडे शताब्दियाँ बीत गई, किन्तु उसकी ऐश्वर्य-इच्छा, विलास-वासना, वैभव-लिप्सा एव कामना-कुज का वह मकबरा आज भी खडा है। सीकरी के वे भव्य खण्डहर मानवीय इच्छाओ, मनुष्य की सुख-वासनाओ तथा गौरव की आकाक्षाओ की श्मशान भूमि है। मानवीय अतृप्त वासनाओ का वह करुण दृश्य देख कर आज वे पाषाण भी क्षुब्ध हो गए है। अपने असमय पतन पर टूटे हुए दिलो की आहें आज भी उन भग्न प्रासादो से सन नन करती हुई निकलती हैं।

अकबर ने स्वप्नलोक निर्माण किया था, किन्तु भौतिक जीवन के कठोर थपेडे खाकर वह भग हो गया। अपनी कृति की दुर्दशा, तथा अपनी आशाओ और कामनाओ को निष्ठुर ससार द्वारा कुचले जाते देख कर अकबर रो पडा। उसका सजीव कोमल हृदय फट कर टुकडे टुकडे हो गया। वे टुकडे सारे भग्न स्वप्नलोक मे बिखर गए, निर्जीव होकर पथरा गए। सीकरी के लाल लाल खण्डहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े है। टुकड़े

स्वप्न भंग हो गया और साथ ही स्वप्नलोक भी उजड गया, ... और तब रह गई उनकी एकमात्र शेष स्मृति। किन्तु दो आँखें—अकबर की ही आँखें—ऐसी थी जिन्होंने यह सारा स्वप्न देखा था, जिनके सामने ही इस स्वप्न का सारा नाटक—कुछ काल के लिए ही क्यो न हो—एक सुन्दर मनोहारी नाटक खेला गया था, . जिसमे अकबर स्वयं एक पात्र था, उस स्वप्नलोक के रंगमंच पर पूरी शान और अदा के साथ अपना पार्ट खेलता था। उन दो आँखों के फिरते ही, उनके बन्द होने के बाद उस स्वप्न की रही-सही स्मृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जो एक समय सच्ची घटना थी, जो बाद में स्वप्न मात्र रह गया था, आज उसका कुछ भी शेष न रहा। अगर कुछ बाकी बचा है तो केवल वह सुनसान भग्न रंगमंच, जहाँ यह दिव्य स्वप्न आया था, जहाँ जीवन का यह अद्भुत नाटक खेला गया था, जहाँ कुछ काल के लिए समस्त संसार को भूल कर शाहंशाह ऐश्वर्य-सागर में गोते लगाने के लिए कूद पड़ा था, जहाँ शाहंशाह के महान जीवन की अथाह कामनाओं और उद्दीप्त वासनाओं ने नग्न नृत्य किया था, और जहाँ वह महान् भारतविजयी सम्राट्, अपनी महत्ता को भूल कर, अपने गौरव को ताक में रख कर एक साधारण मानव बन जाता था, [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible]

वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खण्डहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हें उन करोड़ों मनुष्यों की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासकों, धनिकों तथा विलासियों की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थीं। आज भी उन भव्य खण्डहरों में उन पीड़ितों का रुदन सुनाई देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पड़ते हैं। अपने उस बाल-वैधव्य को स्मरण कर यह परित्यक्ता नगरी उसासें भरती है। विलास-वासना, अतृप्त वासना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासें इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। इन्हीं आहों की गरमी तथा विष से मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आँसुओं के उस तप्त प्रवाह में रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।

× × ×

एक नजर तो देख लो इस मृत शरीर को, अकबर के उस भग्न स्वप्न-संसार के इस मुस्लिम स्मारक को, अकबर के स्वप्नलोक के इन टूटे फूटे अवशेषों को। अकबर के स्वर्ग-विलास के इस लोक को उजड़े शताब्दियाँ बीत गईं, किन्तु उसकी [illegible] विलास-वासना, वैभव-लिप्सा एवं कामना-[illegible]

[illegible]

टुकड़े होकर अकबर का हृदय निर्जीव हो गया, निरन्तर ससार की मार खाकर वह भी पत्थर की तरह कठोर हो गया। जिस हृदय ने अपना यौवन देखा, अपने वैभवपूर्ण दिन देखे, जो ऐश्वर्य में लोटता था, स्नेह-सागर में जो डुबकियाँ लगाता था, राज्यश्री की गोद में जिसने बरसो विश्राम किया, मद से उन्मत्त जो बरसो स्वप्नससार के उस सुन्दर लोक मे विचरा, वही भग्न, जीर्ण-शीर्ण, पथराया हुआ, शताब्दियो से खडा सर्दी, गर्मी, पानी और पत्थर की मार खाकर भी चुप है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गई और आज भी सीकरी के वे सुन्दर रगीले खण्डहर खडे है। उस नवजात शिशु नगरी ने केवल पन्द्रह वर्ष ही शृगार किया, और फिर उसके प्रेमी ने उसे त्याग दिया, उसने उसे ऐसा भुला दिया कि कभी भूल से भी लौट कर मुंह नही दिखाया। ऐश्वर्य और विलास में जिसका जन्म हुआ था, अनन्तयौवना राज्यश्री ने जिसे पाला-पोसा था, एक मदमाते युवा सम्राट ने जिसका शृगार कराने मे अपना सर्वस्व लुटा दिया था और जिसकी अनुपम सुन्दरता पर एक महान् साम्राज्य नाज़ करता था, उससे अपने प्रेमी द्वारा ऐसा तिरस्कार—घोर अपमान—नही सहा गया। अकबर के समय में ही उसने वैभव को त्याग कर विधवा वेश पहिन लिया था। बिछुए फेंक कर उसने बिछुआ हृदय से लगाया। और अकबर की मृत्यु होते ही तो सब कुछ लुट गया, हृदय विदीर्ण हो गया, शोक के मारे फट गया, अग क्षत-विक्षत हो गए, आँखे पथरा गई और आत्मा अनन्त मे विलीन हो गई। भारत विजेता, मुगल-साम्राज्य के निर्माता, महान् अकबर की प्यारी नगरी का वह निर्जीव शरीर शताब्दियो से पडा धूल-धूसरित हो रहा है।

× × ×

सर सर करती हुई हवा एक छोर से दूसरे छोर तक निकल जाती है और आज भी उस निर्जीव सुनसान नगरी मे फुसफुसाहट की आवाज़ मे डरता हुआ कोई पूछता है— क्या अब भी मेरे पास आने को वह उत्सुक है?' बरसो, शताब्दियो से वह उसकी बाट देख रही है, और अब रह गया है उसका

वह अस्थिपजर। उस छिटकी हुई चाँदनी मे तारागण टिमटिमाते हुए मुस्करा कर उसकी ओर इङ्गित करते है—'क्या सुन्दरता की दौड़ इस अस्थिपजर तक ही है?' और प्रतिवर्ष जब मेघ-दल उन खण्डहरो पर होकर गुज़रता है तब वह पूछ बैठता है—'क्या कोई सदेशा भिजवाना है?" और तब उन खण्डहरो मे गहरी निश्वास सुन पडती है और उत्तर मिलता है—"अब किस दिल से उसका स्वागत करूँ?' परन्तु दूसरे ही क्षण उत्सुकता भरी काँपती हुई आवाज़ मे एक प्रश्न भी होता है—'क्या अब भी उसे मेरी सुध है?"

परन्तु विस्मृति का वह काला पट!.. दर्शक के प्रश्न के उत्तर मे गाइड अपनी टूटी फूटी अंग्रेजी मे कहता है—"इस नगरी को हिन्दुस्तान के बादशाह शाहशाह अकबर ने कोई साढे तीन सौ वर्ष पहिले बनवाया था"।

अवशेष

अवशेष

महान् मुग़ल सम्राट् अकबर का प्यारा नगर—आगरा—आज मृतप्राय सा हो रहा है। उसके ऊबड़-खाबड़ धूल भरे रास्तों और उन तंग गलियों में यह स्पष्ट देख पड़ता है कि किसी समय यह नगर भारत के उस विशाल समृद्धिपूर्ण साम्राज्य की राजधानी रहा था; किन्तु ज्यों ज्यों उसका तत्कालीन नाम 'अकबराबाद' भूलता गया त्यों त्यों उसकी वह समृद्धि भी विलीन होती गई। इस नगरी के वृद्ध क्षीण हृदय जुमा मसजिद में अब भी जीवन के कुछ चिन्ह देख पड़ते हैं किन्तु इसका बहुत कुछ श्रेय मुस्लिम काल की उन मृतात्माओं को है अपने अंचल में समेट कर भी विकराल मृत्यु जिनको मानव-समाज के स्मृतिपटल से सदा के लिए निर्वासित नहीं कर सकी, काल के कर द्वारा उनका नश्वर शरीर नष्ट हो गया, सब कुछ लोप हो गया, किन्तु स्मृतिपटल में आज भी उनका पूर्ण स्वरूप विद्यमान है।

[illegible] हो गये किन्तु फिर भी उन दिनों की स्मृतियाँ आगरा के [illegible] रही हैं। [illegible] की ऊँची हवा में आज भी ऐश्वर्य-[illegible] आँसुओं की [illegible] फैला हुआ है। [illegible] मानव-प्रेम की [illegible] के [illegible] यौवन का वह स्मारक ताज, आज [illegible] आँसुओं में [illegible] आगरा के वायुमण्डल को [illegible] कर रहा है। आज भी उस चिर-विरही प्रेमी के आँसुओं का [illegible] अदृश्य रूप में मिलता है। ताज में [illegible] मुग़ल सम्राट के [illegible] हृदय की धकधकाहट [illegible] के वक्षस्थल पर छोटी छोटी [illegible] उठती है और दूर दूर तक उसके निःश्वासों की [illegible] ध्वनि आज भी

सुन पडती है । कठोर भाग्य के सम्मुख सुकोमल मानव हृदय की विवशता को देख कर यमुना भी हताश हो जाती है, ताज के पास पहुंचते पहुंचते मन्द सी जाती है, उस समाधि को छूकर तो उसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, आंसुओ का प्रवाह उमड पडता है, वह सीधा बह निकलता है ।

आगरे का वह उन्नत किला, अपने गत यौवन पर छलाछल कर रह जाता है । प्रातःकाल बालसूर्य की आशामयी किरणे जब उस रक्तवर्ण किले पर गिरती है, तब वह चौंक उठता है । उस स्वर्ण प्रभात मे वह भूल जाता है कि अब उसके उन गौरवपूर्ण दिनो का अन्त हो गया है, और एक बार पुन पूर्णतया कान्तियुक्त हो जाता है । किन्तु कुछ ही समय मे उसका सुख-स्वप्न भग हो जाता है, उसकी वह ज्योति और उसका वह सुखमय उल्लास, उदासी तथा निराशापूर्ण सुनसान वातावरण मे परिणत हो जाते है । आशापूर्ण हर्ष मे दमकते हुए उस उज्ज्वल रक्तवर्ण मुख पर पतन की स्मृति-छाया फैलने लगती है । और दिवस भर के उत्थान के बाद सध्या समय अपने पतन पर क्षुब्ध मरीचिमाली जब प्रतीची के पादप-पुज मे अपना मुख छिपाने को दौड पडते है और विदा होने से पूर्व अश्रुपूर्ण नेत्रो से जब वे उस अमर करुण कहानी की ओर एक निराशापूर्ण दृष्टि डालते है, तब तो वह पुराना किला रो पडता है, और अपने लाल लाल मुख पर, जहा आज भी सौदर्यपूर्ण विगत-यौवन की झलक देख पडती है अन्धकार का काला घूंघट खीच लेता है ।

वर्तमानकालीन दशा पर ज्यो ही आत्मविस्मृति का पट गिरता है, अन्त-चक्षु खुल जाते है और पुन पुरानी स्मृतिया ताजी हो जाती है, उस पुराने रगमच पर पुन उस विगत जीवन का नाटक देख पडता है । सुन्दर सुम्मन वुर्ज को एक बार फिर उस दिन की याद आ जाती है, जब दु ख और करुणा-पूर्ण वातावरण मे मृत्युशय्या पर पडा कैदी शाहजहा ताज को देख देख कर उसासे भर रहा था, जहानआरा अपने सम्मुख निराशापूर्ण निस्सार करुण जीवन के भीषण तम को आते देख कर रो रही थी, जब उनके एकमात्र साथी, श्वेत पत्थरो तक के पाषाण-हृदय पिघल गए थे और जब वह रत्नखचित बुर्ज भी रोने लगा था, उसके आसू ढुलक ढुलक कर ओस की बूदो के रूप मे इधर-उधर बिखर रहे थे ।

और वह मोती मसजिद लाल लाल किले का वह उज्ज्वल मोती आज वह भी खोखला हो गया। उसका ऊपरी आवरण, उसकी चमक-दमक वैसी ही है किन्तु उसकी वह शान अब लुप्त हो गई। उसका वह रिक्त भीतरी भाग धूल-धूसरित हो रहा है, और आज एकाध व्यक्ति के अतिरिक्त उस मसजिद में परमपिता का भी नामलेवा नहीं मिलता। प्रति दिन सूर्य पूर्व से पश्चिम को चला जाता है, सारे दिन तपने के बाद सन्ध्या हो जाती है, सिहर सिहर कर वायु बहती है, किन्तु वे शोभित प्रस्तरखण्ड सुनसान अकेले ही खड़े अपने दिन गिना करते हैं। उस निर्जन स्थान में एकाध व्यक्ति को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि उन दिनों यहां आने वाले व्यक्तियों में से किसी की आत्मा अपनी पुरानी स्मृतियों के बन्धन से बंध कर खिंची चली आई है। प्रार्थना के समय 'मुअज्जन' की आवाज सुन कर यही प्रतीत होता है कि शताब्दियों पहिले गूंजने वाली हलचल चहल-पहल तथा शोरगुल की प्रतिध्वनि आज भी उस सुन्दर पवित्र मसजिद में गूंज रही है।

उस लाल लाल किले में मोती मसजिद, [illegible] आदि [illegible] भवनों को देख कर यही प्रतीत होता है कि अपने प्रेमी को, अपने [illegible] की मृत्यु से [illegible] होकर इस किले को वैराग्य हो गया, [illegible] शासन [illegible]

को पीकर भी तृप्त नही हुई, आज भी वह आप के आँसुओ को पीने के लिए, कुछ क्षणो के लिए ही क्यो न हो आप की सुखद घडियो को भी विनष्ट करने को उतारू है।

उस किले का वह लाल लाल जहाँगीरी महल—सुरा, सुन्दरी और सगीत के उस अनन्य उपासक की वह विलास-भूमि—आज भी वह यौवन की लाली से रगा हुआ है। प्रति दिन अधकारपूर्ण रात्रि मे जब भूतकाल की यवनिका उठ जाती है, तब पुन उन दिनो का नाट्य होता देख पडता है, जब अनेको की वासनाएँ अतृप्त रह जाती थी, कइयो की जीवन-घडियाँ निराशा के ही अन्धकारमय वातावरण मे बीत जाती थीं, और जब प्रेम के उस वालुकामय शान्ति-जल-विहीन ऊसर मे पडे पडे अनेको उसकी गरमी के मारे तडपते थे। उस सुनसान परित्यक्त महल मे रात्रि के समय सुन पडती है उल्लासपूर्ण हास्य तथा विषादमय करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनियाँ। वे अशान्त आत्माएँ आज भी उन वैभवविहीन खण्डहरो मे घूमती है और सारी रात रो रो कर अपने अपार्थिव अश्रुओ से उन पत्थरो को लथपथ कर देती है। किन्तु जब धीरे धीरे पूर्व मे अरुण की लाली देख पडती है, आसमान पर स्वच्छ नीला नीला परदा पडने लगता है, तब पुन इन महलो मे वही सन्नाटा छा जाता है, और निस्तब्धता का एकछत्र साम्राज्य हो जाता है। उन मृतात्माओ की यदि कोई स्मृति शेष रह जाती है तो उनके वे बिखरे हुए अश्रुकण, किन्तु क्रूर काल उन्हे भी सुखा देना चाहता है। यहाँ की शान्ति यदि कभी भग होती है तो केवल दर्शको की पद-ध्वनि से तथा "गाइडो" की टूटी-फूटी अग्रेजी शब्दावली द्वारा। रात और दिन मे कितना अन्तर होता है। विस्मृति के पट के इधर और उधर एक ही पट की दूरी, वास्तविकता और स्वप्न, भूत तथा वर्तमान कुछ ही क्षणो की दूरी और हजारो वर्षो का सा भेद कुछ भी समझ नही पडता कि यह है क्या।

उस भग्नप्राय किले के अब केवल ककालावशेष रह गए है, उसका हृदय भी बाहर निकल पडा हो ऐसा प्रतीत होता है। नक्षत्र-खचित आकाश के चदवे के नीचे पडा है वह काले पत्थर का टूटा हुआ सिंहासन, जिस पर किसी समय गुदगुद मखमल का आवरण छाया हुआ होगा, और जिस पत्थर तक को

हृदय मिट्टी में मिल कर भी अपनी कृतियों की दुर्दशा नहीं देख सकता था, और न देखना ही चाहता था। उस शान्त-वातावरण-पूर्ण सुरम्य उद्यान में स्थित यह सुन्दर समाधि अपने ढंग की एक ही है। अकबर के व्यक्तित्व के समान ही समाधि दूर से एक साधारण सी वस्तु जान पड़ती है, किन्तु ज्यों ज्यों उसके पास जाते हैं, उस समाधि-भवन में पदार्पण करते हैं, त्यों त्यों उसकी महत्ता, विशालता एवं विशेषताएँ अधिकाधिक दिखाई पड़ती हैं। उस महान् अव्यवहारिक धर्म 'दीन-ए-इलाही' के इस एकमात्र स्मारक को निर्माण करने में अकबर ने अनेकानेक वास्तुकलाओं के आदर्शों का अनोखा सम्मिश्रण किया था।

ध्रुव की ओर सिर किये अकबर अपनी कब्र में लेटा था। एक ध्रुव को लेकर ही उसने अपने समस्त जीवन तथा सारी नीति की स्थापना की थी, और उसके उस महान् आदर्श ने, विश्व-बन्धुत्व के उस टिमटिमाते हुए ध्रुव ने, मृत अकबर को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अकबर का वह छोटा सा शव उस विशाल समाधि में भी नहीं समा सका, वह वहाँ शान्ति से नहीं रह सका। विश्व-प्रेम तथा मानव-भ्रातृत्व के प्रचारक अकबर के अन्तिम अवशेष, वे मुट्ठी भर हड्डियाँ भी विश्व में मिल जाना चाहती थीं। विशाल हृदय अकबर मर कर भी कठोर पत्थरों की उस विशाल, किन्तु आत्मा की दृष्टि से बहुत ही संकुचित परिधि में नहीं समा सका। अपने अप्राप्त आदर्शों की ही अग्नि में जल कर उसकी अस्थियाँ भी भस्मसात् हो गईं, और वह भस्म वायु-मण्डल में व्याप्त हो कर विश्व के कोने कोने में समा गई। अकबर की हड्डियाँ भस्मसात् हो गईं परन्तु अपने आदर्शों को न प्राप्त कर सकने के कारण उस महान सम्राट की वह प्रदीप्त हृदय-ज्वाला आज भी बुझी नहीं है। उस मिट्टी के दीपक-रूपी हृदय में अगाध मानव स्नेह भरा है, उसमें सदिच्छाओं तथा शुभ भावनाओं की मोटी बत्ती पड़ी है और वह दिया तिल तिल कर जलता है। वह 'टिमटिमाती' हुई ज्योति आज भी अकबर की समाधि पर जल रही है और धार्मिक संकीर्णता के अन्धकार से पूर्ण विश्व के सदृश गोल तथा विशाल गुम्बज में वह उन महान् आदर्शों की ओर इंगित करती है जिनको प्राप्त करने के लिए शताब्दियों पहिले अकबर ने प्रयत्न किया था और जिसे आज भी भारतीय राष्ट्र नहीं प्राप्त कर सका है।

तीन कब्रें

तीन कब्रें

अनन्तयौवना राज्यश्री द्वारा पाले पोसे गए मुग़ल साम्राज्य का यौवन फूट निकला, अँगड़ाई लेकर उसने पैर पसारे। साम्राज्य के अंग अंग में नवीन स्फूर्ति का रक्त दौड़ रहा था। उसका वक्षस्थल फूल गया, धमनियों में कम्पन होने लगा। भारतीय साम्राज्य के मुख पर नवयौवन की लाली फैलने लगी, उसके उन उजले उजले कपोलों पर गुलाबी रंग के महलों की रश्मिम रेखाएँ यत्र-तत्र दिखाई देने लगीं। राजधानी-रूपी हृदय की धड़कन प्रारम्भ हुई। अपने उमड़ते हुए यौवन के साथ वह छोटा सा हृदय भी फैलने लगा।

वह मस्ताना यौवन था। धन-धान्य-पूर्ण साम्राज्य ने आँखें खोलीं तो देखा नवजीवन का वह सुनहला प्रभात। सौभाग्य के बालरवि की लाल-लाल किरणों ने पूर्वी आकाश को रक्तवर्ण कर दिया, दुर्भाग्य-घन-घटा के कुछ अवशिष्ट यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े भी अब विलीन होने की चेष्टा कर रहे थे। और उस यौवन में नवयुवा साम्राज्य को अकबर ने पिलाई राजमद की वह लाल-लाल मदिरा। उसकी मदमाती सौरभ से ही अनुभवहीन युवा मस्त हो गया, और उसको पीकर तो बेसुधि बेतरह छा गई; यौवन की मस्ती पर राजमद का वह प्याला ओह! बहुत था वह नशा, साम्राज्य तो बदहोश हो गया, मस्त होकर नशे में झूमने लगा।

और उन मदमाते दिनों में अकबर ने पुत्र का मुँह देखा। यौवन की मस्ती में झूमते हुए राजमद को पीकर उन्मत्त निरन्तर स्वप्नलोक में विचरने वाला अकबर ही तो सलीम का पिता था। उन सुनहले दिनों में मादक सौरभ से पूर्ण उस मस्ताने वातावरण में राज्यश्री ने अपने लाडले सलीम को पाला

अतृप्त प्रेमाग्नि की आँच न सह कर सूख गया। दो आँसू टपके, कुछ आहें निकली। प्रेम-प्रभात का वह सुनहला आकाश छिन्न-भिन्न हो गया। उन सुखपूर्ण दिनो की, उस सुनहले प्रेमस्वप्न की अब शेष रह गई केवल कुछ कसक भरी स्मृतियाँ।

× × ×

और खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि, बलिदान की वह कब्र, वहाँ तब कुछ भी न था। बरसो बाद जब सलीम सिंहासनारूढ हुआ तो उसका वह मृत प्रेम पुन उमड पडा। उसके हृदय-ससार मे फिर जो बवण्डर उठा तो यह आँधी उसके जले हुए भावो की भस्म को भी यत्र-तत्र बिखेरने लगी। अपने हृदय के प्रथम व्रण की, अपने सुन्दर सुनहले जीवन-प्रभात की स्मृति का साकार स्वरूप, उनका स्मारक, देखने के लिए वह उत्सुक हो उठा। इतने बरसो बाद भी जहाँ उस मृत प्रेमिका के लिए स्थान था, जहाँ तब भी उसकी स्मृति विद्यमान थी, जहाँ तब भी अनन्त मे विलीन हो जाने वाली उस मृता प्रियतमा के लिए प्रेमाग्नि धधक रही थी—अपने उसी हृदय के अनुरूप उसने वह सुन्दर कब्र बनवाई। अनारकली की स्मृति बरसो विस्मृति के काले पट मे ढकी जहाँगीर के हृदय मे रही—अब तो जहाँगीर ने अनारकली के अवशेषो को भी प्रेमस्मृति के गाढ आलिंगन मे लिपटा लिया, समाधि-रूपी स्मारक के कठोर आलिंगन मे उन्हे जकड लिया।

जहाँ प्रथम बार अनारकली दफनाई गई थी, कठिनाई से घूमते-घामते वहाँ पहुँच पाते है, किन्तु ज्योही वहाँ पहुँचते है हमे दिखाई देता है कि वह वहाँ नही है। जहाँ उसका एकछत्र राज्य था, जिस हृदय पर एक समय उसका ही अधिकार था, उस पर अब दूसरो का आधिपत्य होते देख कर कब्र मे भी अनारकली का शव सिहर उठा, और भावावेश मे आकर उसका वह अस्थि-पजर भी वहाँ से उठ कर चल दिया। मानव हृदय की भूलने की लत का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

ससार के लिए मानव जीवन एक खेल है, मनोरजन की एक अद्भुत सामग्री है। मानव हृदय एक कौतूहलोत्पादक वस्तु है। उसे तडपते देख

अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले उस प्याले को जी भर कर चूमा, और होते होते उस प्याले के प्रति जहाँगीर के हृदय में इतना प्रेम उमडा कि वह स्वय एक प्याले में कूद पडा। . प्याला ! वह लाल लाल लबालब भरा प्याला !

....आह ! वह कितना प्यारा था !

अपने जीवन-प्रभात मे ही वह अलसाया हुआ, चोट खाकर घायल पडा था। ससार के प्रति उदासीन, आँखें बन्द किए, वह पडा पडा अपने ही स्मृति-लोक में घूमता था। पुरानी स्मृतियो को याद कर-कर वह झूमता था, रोता था, किन्तु ससार उसके प्रति उदासीन न था, भाग्य से यह देखा न गया कि जहाँगीर यो ही अकर्मण्य पडा विस्मरणीय विगत बातो को याद कर पुराने दिनो के सपने देखे।

राह-राह की भिखारिन ने उन अलसाए हुए जहाँगीर को ठोकर मार कर जगा दिया। वह युवा-सुन्दरी न जाने किन किन अज्ञात देशो से घूमती-घामती शाहजादे की राह में आ पहुँची। सलीम तो उसे देख कर पागल हो गया ; उसका छोटा सा हृदय पुन मचल गया। किन्तु भाग्य से कौन लड़ सका है ? प्यासे को पानी का प्याला दिखा-दिखा कर उसे तरसाने में ही उस कठोर नियति को आनन्द आता है। जिसे अपनाने के लिए वह उत्सुक हो रहा था, वह पराई हो गई, उसकी देखती आँखो विहार भेज दी गई। उसके चोट खाए हुए हृदय पर पुन आघात लगा, वह विष का घूंट पीकर रह गया।

उस सुन्दर मस्ताने यौवन-प्रभात की एक मनोहारी झलक ने प्रेमोद्यान की मादक सुगन्धित समीर के एक झोके ने, खिलते हुए प्रेम-पुष्प की एक झाँकी ने, तथा मधुर रागिनी की प्रथम तान ने ही उस मदमाते शाहजादे को मतवाला बना दिया। प्याले पर प्याला ढल रहा था, और उस पर इस मधुर स्मृति का भार तथा भावी आशाओ की उत्सुकता शाहजादा पडा उस दिन की बाट जोहने लगा, जब वह स्वच्छन्द होकर अपनी आकाक्षाओ को पूर्ण कर सकेगा। मानवीय-भावरूपी सागर के वक्ष स्थल पर एक बार लहरे उठ चुकी थी, वे कल्लोल कर कठोर भाग्य-रूपी किनारे पर टकरा कर खण्ड खण्ड होकर बिखर चुकी थीं। किन्तु उस कल्लोल की वह सुन्दर ध्वनि अब भी उसके कानो मे गूँज रही थी। उस शाहजादे का हृदय-ससार शान्त होकर उस दिन की

राह देख रहा था, जब पुन यवनिका उठेगी, जब पुन वे सुखद दृश्य देखने को मिलेंगे, और जब एक बार फिर अपने प्रेमी को देखकर उस प्रेमिका के वक्षस्थल मे भावो का ववण्डर उठेगा, उसके प्रेम का सागर उमड पडेगा, उसमे तरगे उठेगी, और उन तरगो पर नृत्य करेगी वह प्रेम-सुन्दरी। सारा ससार जब स्तब्ध होकर उस दृश्य को देखेगा, और जब सलीम स्वय अपनी प्रेयसी को गले से लगाने के लिए दौड़ कर उस प्रेम-महोदधि मे कूद पडेगा, तथा जब उस तारकमय आकाश के नीचे उस छिटकी हुई चाँदनी में निर्जन वन भी स्वर्ग से अधिक सुखदायक होगा, सगीत की मधुर तान से भी अधिक आकर्षक होगी वह शान्त निस्तब्धता, जब प्रेमाग्नि मे भी चाँदनी की सी शीतलता आ जावेगी और जब जलते हुए अगारो से ही हृदय की वह प्यास वुझेगी
किन्तु यह तो सारा एक सुख-स्वप्न था, और इसी स्वप्नलोक मे विचरता था वह शाहजादा।

× × ×

और वरसो बाद जब पुन उस निराशा के तम मे आशा-ज्योति की प्रथम रेख दिखाई पड़ी, तब तो शाहजादे को अपनी अनुभूति का खयाल आया। टूटे हुए दिल को लेकर जहाँगीर ने ससार की रक्षा करने के लिए कमर बाँधी, उसे तो आशा का ही एकमात्र सहारा था।

और आधे युग के सघर्ष के बाद अपने मृत पति के प्रति कर्तव्य की भावना पर जब नूरजहाँ के प्रेमपिपासु आकाक्षापूर्ण हृदय ने विजय पाई, और जब उस चोट खाए हुए भग्न हृदय वाले जहाँगीर को उसने गले से लगाया तब तो नि[illegible]-तम से घिरे हुए उस छिन्न-भिन्न हृदय का कुछ सतोष हुआ कुछ [illegible] किन्तु पहिले की सी मस्ती नही आई। वरसो के [illegible] के बाद [illegible] ने [illegible] को इच्छित वर दिया [illegible] तो आनन्द [illegible]। पुन प्रेम-मदिरा का प्याला भरा जाने ल[illegible] किन्तु इस समय [illegible] के यौवन-अर्क की तेजी घटने लगी थी। [illegible] चाटो [illegible]। उस तृप्ति मे उस सुखपूर्ण जीवन मे भी कुछ [illegible] का अनुभव हो[illegible] था। [illegible] प्रेमाग्नि मे जल-जल कर उसका हृदय [illegible] था वह [illegible]

अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले उस प्याले को जी भर कर चूमा, और होते होते उस प्याले के प्रति जहाँगीर के हृदय में इतना प्रेम उमडा कि वह स्वय एक प्याले में कूद पडा। . प्याला! वह लाल लाल लबालब भरा प्याला! . आह! वह कितना प्यारा था!

अपने जीवन-प्रभात मे ही वह अलसाया हुआ, चोट खाकर घायल पडा था। ससार के प्रति उदासीन, आँखें बन्द किए, वह पड़ा पडा अपने ही स्मृति-लोक में घूमता था। पुरानी स्मृतियों को याद कर-कर वह झूमता था, रोता था, किन्तु ससार उसके प्रति उदासीन न था, भाग्य से यह देखा न गया कि जहाँगीर यो ही अकर्मण्य पडा विस्मरणीय विगत बातो को याद कर पुराने दिनो के सपने देखे।

राह-राह की भिखारिन ने उस अलसाए हुए जहाँगीर को ठोकर मार कर जगा दिया। वह युवा-सुन्दरी न जाने किन किन अज्ञात देशो से घूमती-घामती शाहजादे की राह मे आ पहुँची। सलीम तो उसे देख कर पागल हो गया; उसका छोटा सा हृदय पुन मचल गया। किन्तु भाग्य से कौन लड़ सका है? प्यासे को पानी का प्याला दिखा-दिखा कर उसे तरसाने में ही उस कठोर नियति को आनन्द आता है। जिसे अपनाने के लिए वह उत्सुक हो रहा था, वह पराई हो गई, उसकी देखती आँखो बिहार भेज दी गई। उसके चोट खाए हुए हृदय पर पुन आघात लगा, वह विष का घूँट पीकर रह गया।

उस सुन्दर मस्ताने यौवन-प्रभात की एक मनोहारी झलक ने, प्रेमोद्यान की मादक सुगन्धित समीर के एक झोके ने, खिलते हुए प्रेम-पुष्प की एक झाँकी ने, तथा मधुर रागिनी की प्रथम तान ने ही उस मदमाते शाहज़ादे को मतवाला बना दिया। प्याले पर प्याला ढल रहा था, और उस पर इन मधुर स्मृति का भार तथा भावी आशाओ की उत्सुकता शाहजादा पडा उस दिन की बाट जोहने लगा, जब वह स्वच्छन्द होकर अपनी आकाक्षाओ को पूर्ण कर सकेगा। मानवीय-भावरूपी सागर के वक्ष स्थल पर एक बार लहरे उठ चुकी थी, वे कल्लोल कर कठोर भाग्य-रूपी किनारे पर टकरा कर खण्ड खण्ड होकर बिखर चुकी थी। किन्तु उस कल्लोल की वह सुन्दर ध्वनि अब भी उसके कानो मे गूँज रही थी। उस शाहज़ादे का हृदय-ससार शान्त होकर उस दिन की

राह देख रहा था, जब पुन यवनिका उठेगी, जब पुन वे सुखद दृश्य देखने को मिलेंगे, और जब एक बार फिर अपने प्रेमी को देखकर उस प्रेमिका के वक्षस्थल में भावो का ववण्डर उठेगा, उनके प्रेम का सागर उमड पडेगा, उनमे तरंगें उठेंगी, और उन तरगो पर नृत्य करेगी वह प्रेम-सुन्दरी। सारा ससार जब स्तब्ध होकर उस दृश्य को देखेगा, और जब सलीम स्वय अपनी प्रेयसी को गले से लगाने के लिए दौड कर उस प्रेम-महोदधि में कूद पडेगा; तथा जब उस तारकमय आकाश के नीचे उस छिटकी हुई चाँदनी मे निर्जन वन भी स्वर्ग से अधिक सुखदायक होगा, सगीत की मधुर तान से भी अधिक आकर्षक होगी वह शान्त निस्तब्धता, जब प्रेमाग्नि मे भी चाँदनी की सी शीतलता आ जावेगी, और जब जलते हुए अगारो से ही हृदय की वह प्यास बुझेगी किन्तु यह तो सारा एक सुख-स्वप्न था, और इसी स्वप्नलोक मे विचरता था वह शाहजादा।

× × ×

और बरसो बाद जब पुन उस निराशा के तम मे आशा-ज्योति की प्रथम रेख दिखाई पडी, तब तो शाहजादे को अपनी अनुभूति का खयाल आया। टूटे हुए दिल को लेकर जहाँगीर ने ससार की रक्षा करने के लिए कमर बाँधी, उसे तो आशा का ही एकमात्र सहारा था।

और आधे युग के सघर्ष के बाद अपने मृत पति के प्रति कर्तव्य की भावना पर जब नूरजहाँ के प्रेमपिपासु आकाक्षापूर्ण हृदय ने विजय पाई, और जब उस चोट खाए हुए भग्न हृदय वाले जहाँगीर को उसने गले से लगाया, तब तो निराशा-तम से घिरे हुए उस छिन्न-भिन्न हृदय को कुछ सतोष हुआ, कुछ तृप्ति हुई, किन्तु पहिले की सी मस्ती नही आई। बरसो के मान के बाद नूरजहाँ ने जहाँगीर को इच्छित वर दिया, जहाँगीर तो आनन्द के मारे पागल हो गया। पुन प्रेम-मदिरा का प्याला भरा जाने लगा, किन्तु इस समय जहाँगीर के यौवन-अर्क की तेजी घटने लगी थी। गहरी चोटो की कसक अब भी शेष थी। उस तृप्ति मे, उस सुखपूर्ण जीवन मे भी कुछ दर्द का अनुभव होता था। बरसो प्रेमाग्नि मे जल-जल कर उसका हृदय झुलस गया था, वह अधजला दिल

अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले उस प्याले को जी भर कर चूमा, और होते होते उस प्याले के प्रति जहाँगीर के हृदय मे इतना प्रेम उमडा कि वह स्वय एक प्याले में कूद पडा। प्याला ! वह लाल लाल लबालब भरा प्याला !

. आह ! वह कितना प्यारा था !

अपने जीवन-प्रभात मे ही वह अलसाया हुआ, चोट खाकर घायल पडा था। ससार के प्रति उदासीन, आँखें बन्द किए, वह पडा पडा अपने ही स्मृति-लोक में घूमता था। पुरानी स्मृतियो को याद कर-कर वह झूमता था, रोता था, किन्तु ससार उसके प्रति उदासीन न था, भाग्य से यह देखा न गया कि जहाँगीर यो ही अकर्मण्य पडा विस्मरणीय विगत बातो को याद कर पुराने दिनो के सपने देखे।

राह-राह की भिखारिन ने उस अलसाए हुए जहाँगीर को ठोकर मार कर जगा दिया। वह युवा-सुन्दरी न जाने किन किन अज्ञात देशो से घूमती-घामती शाहजादे की राह मे आ पहुँची। सलीम तो उसे देख कर पागल हो गया ; उसका छोटा सा हृदय पुन मचल गया। किन्तु भाग्य से कौन लड सका है ? प्यासे को पानी का प्याला दिखा-दिखा कर उसे तरसाने में ही उस कठोर नियति को आनन्द आता है। जिसे अपनाने के लिए वह उत्सुक हो रहा था, वह पराई हो गई, उसकी देखती आँखो बिहार भेज दी गई। उसके चोट खाए हुए हृदय पर पुन आघात लगा, वह विष का घूंट पीकर रह गया।

उस सुन्दर मस्ताने यौवन-प्रभात की एक मनोहारी झलक ने प्रमोद्यान की मादक सुगन्धित समीर के एक झोंके ने, खिलते हुए प्रेम-पुष्प की एक झाँकी ने, तथा मधुर रागिनी की प्रथम तान ने ही उस मदमाते शाहजादे को मतवाला बना दिया। प्याले पर प्याला ढल रहा था, और उस पर इस मधुर स्मृति का भार तथा भावी आशाओ की उत्सुकता शाहजादा उस दिन की बाट जोहने लगा, जब वह स्वच्छन्द होकर अपनी आकाक्षाओ को पूर्ण कर सकेगा। मानवीय-भावरूपी सागर के वक्षस्थल पर एक बार लहर उठ चुकी थी, वे कल्लोल कर कठोर भाग्य-रूपी किनारे पर टकरा कर खण्ड खण्ड होकर बिखर चुकी थी। किन्तु उस कल्लोल की वह सुन्दर ध्वनि अब भी उसके कानो मे गूंज रही थी। उस शाहजादे का हृदय-समार शान्त होकर उस दिन की

[illegible] के इस पार ऐसे जाने पड़े थे। जहाँगीर ने स्वयं को मदिरा का [illegible] समर्पित किया था, किन्तु उसकी भी रक्षा के लिए महान् [illegible] की आवश्यकता थी। नूरजहाँ ने देखा कि यदि वह अपने प्रेमपात्र की रक्षा न करेगी तो उसकी सत्ता, उसका यह गौरव और मान सब कुछ नष्ट हो जायेगा। जहाँगीर को अपने हृदय-प्रदेश के अन्तरतम निभृत कक्ष में छिपा रखना, तथा उसके हृदय को उसके प्रेम को वहाँ बन्दी रखना भी नूरजहाँ को यथेष्ट प्रतीत न हुआ, उसे अपने वक्ष में समेटे हृदय से चिपटाए लिए रहना ही उसे अत्यावश्यक जान पड़ा।

× × ×

अकबर के शासनकाल में जो मादकता साम्राज्य पर छा रही थी उसी के फलस्वरूप जहाँगीर के समय में आई यह अन्धकारपूर्ण आँधी। अन्धकार के इस काले वातावरण में वासनाओं के उस घनघोर तम में पूर्ण संसार में प्रेम-भक्ति तथा प्रेम-विद्रोह का साथ ही भीषण प्रवाह आया, भयंकर आग लगी। इस दावानल में सब कुछ स्वाहा हो गया और उसके उन भस्मावशेषों में से निकला प्रेम-मन्दिर का पवित्र मोती—ताज। समुद्र-मन्थन के समय कालकूट विष के बाद श्वेत वस्त्र पहिने हाथ में अमृत का कमण्डल लिए ज्यों धन्वन्तरि निकले त्यों ही साम्राज्य-स्थापना के मोह तथा उद्दाम वासनाओं के भीषण झगड़े के बाद निकला वह प्रेमामृत वह धवल-प्रेम-स्मारक और उसे संसार को प्रदान किया उस श्वेत-वसन वाले वृद्ध शाहजहाँ ने। महादेव की तरह जहाँगीर भी इस कालकूट भीषण दावानल को पी गया, और जीवन-पर्यन्त उसके भयंकर प्रभाव से जलता रहा और जब निकली शुद्ध प्रेम की वह ज्योति तो उसे अपने पुत्र शाहजहाँ तथा संसार के समस्त दर्शकों के लिए छोड़ दिया। विषय-वासना के इस हलाहल को पीकर जहाँगीर सचमुच संसार का रक्षक हुआ।

किन्तु विष तो विष ही था। बरसों अपने टूटे हुए हृदय को सँभालते-सँभालते जहाँगीर बेदम हो गया। उसका हृदय निरन्तर चोटें खाकर जर्जर हो चुका था। वह विष उसकी नस-नस में व्याप्त हो रहा था।

शराने फफोलो ने दर्द के मारे फफकाता था। इसी इश्क के कारण जहाँगीर जीवन भर तड़पता रहा। अपने उस दर्द को भुलाने के लिए, अपनी पुरानी दुखपूर्ण स्मृतियो को मिटाने के हेतु, तथा यौवन की मस्ती का पुन आह्वान करने को ही जहाँगीर ने मदिरा-देवी की उपासना की।

भग्न हृदयो मे नवीन आशा का सचार हो सकता है, मनुष्य की पुरानी स्मृतियाँ कुछ काल के लिए भुलाई जा सकती है, उसका वह मस्ताना यौवन उसके स्वप्नलोक मे पुन लौट सकता है, किन्तु कहाँ है वह मरहम जिससे वे व्रण, निराशा की गहरी चोटो के वे चिह्न, सर्वदा के लिए मिट सकेंगे, कहाँ है वह अथाह सागर जिसमे मनुष्य अपने भूतकाल को चिरकाल के लिए डुबो दे, कहाँ है वह जादू भरा पानी जिससे मनुष्य अपने स्मृति-पटल पर अंकित स्मृतियो को सर्वदा के लिए धो डाले, तथा कहाँ है वह जादू भरी लकडी जिससे मनुष्य का सुख-स्वप्न एक चिरस्थायी सत्य हो जाय? ससार को सुख-लोक बनाने और अपने स्वप्नो को यथार्थता मे परिणत करने का प्रयत्न करना मनुष्य के स्वाभाविक भोलेपन का एक अच्छा उदाहरण है। वह मृगमरीचिका के पीछे दौडता है, किन्तु प्यास बुझना तो दूर रहा, प्यास के मारे ही तडप तडप कर वह मर जाता है।

अपनी प्रेम-मूर्ति नूरजहाँ को पाकर जहाँगीर ने उसके प्रति आत्मसमर्पण किया, उसके चरणो में सारे साम्राज्य एव सारी सत्ता को रख दिया। नूरजहा ने उन्हे ग्रहण किया। हृदयो पर शासन करते करते अब उसे साम्राज्य पर शासन करने का चस्का लगा। भारत पर अब मानवीय भावो का दौर दौरा हो गया। एक ववण्डर उठा एक भयकर तूफान आया साय-साँय करती हुई आँधी चलने लगी और सर्वत्र प्रलय के चिह्न दिखाई देन लगे। खुसरो प्यारा खुसरो न जाने कहा चला गया उस दुर्दिन म उसके गुम हो जाने का पता भी न लगा। खुरम को भी कहा का कहा उडा दिया। शहरयार तो वेचारा वेहोश पडा था। जहाँगीर भी स्वय आख बन्द किए पडा पडा सुरा, सुन्दरी तथा सगीत के स्वप्नलोक मे विचर रहा था। किन्तु जब एक झोका आया और जब तूफान का अन्त होने लगा तब जहागीर न आख कुछ खोली, देखा कि उसका लिए नूरजहा रावलपिण्डी के पास भागी चली जा रही थी,

दुर्दम और महानता की प्रेरणा के उस पार ऐसे डाले पड़े थे। जहाँगीर ने स्वयं को संसार का रक्षक घोषित किया था, किन्तु उसकी भी रक्षा के लिए जहान के नूर की आवश्यकता पड़ी। नूरजहाँ ने देखा कि यदि वह अपने प्रेमपात्र की रक्षा न करेगी तो उसकी सत्ता, उसका वह गौरव और शासन, सब कुछ नष्ट हो जावेगा। जहाँगीर को अपने हृदय-प्रदेश के अन्तरतम निभृत कक्ष में छिपाए रखना, तथा उनके हृदय को उनके प्रेम को वहाँ बन्दी रखना भी नूरजहाँ को पर्याप्त प्रतीत न हुआ; उसे अंचल में समेटे हृदय से चिपटाए लिए जाना ही उसे अत्यावश्यक जान पड़ा।

× × ×

अकबर के शासनकाल में जो मादकता साम्राज्य पर छा रही थी, उसी के फलस्वरूप जहाँगीर के समय में आई वह अन्धकारपूर्ण आँधी। अन्धकार के उस काले वातावरण में वासनाओं के उस घनघोर तम से पूर्ण संसार में प्रेम-मदिरा तथा प्रेम-विद्रोह का साथ ही भीषण प्रवाह आया, भयकर आग लगी। उस दावानल में सब कुछ स्वाहा हो गया और उसके उन भस्मावशेषों में से निकला प्रेम-सलिल का पवित्र सोता—ताज। समुद्र-मन्थन के समय कालकूट विष के बाद श्वेत वस्त्र पहिने हाथ में अमृत का कमण्डल लिए ज्यों धन्वन्तरि निकले त्यों ही साम्राज्य-स्थापना में मोह तथा उद्दाम वासनाओं के भीषण अन्धड़ के बाद निकला वह प्रेमामृत वह धवल-प्रेम-स्मारक, और उसे संसार को प्रदान किया उस श्वेत-वसन वाले वृद्ध शाहजहाँ ने। महादेव की तरह जहाँगीर भी उस कालकूट भीषण दावानल को पी गया और जीवन-पर्यंत उसके भयङ्कर प्रभाव से जलता रहा और जब निकली गूढ़ प्रेम की वह ज्योति तो उसे अपने पुत्र शाहजहाँ तथा संसार के समस्त दर्शकों के लिए छोड़ दिया। विषयवासना के इस हलाहल को पीकर जहाँगीर सचमुच संसार का रक्षक हुआ।

किन्तु विष तो विष ही था। बरसों अपने टूटे हुए हृदय को सँभालते-सँभालते जहाँगीर बेदम हो गया। उसका हृदय निरन्तर चोटें खाते-खाते चकनाचूर हो चुका था। वह विष उसकी नस-नस में व्याप्त हो रहा था।

आज भी उन पत्थरों पर, जहाँगीर के तड़पते हुए हृदय पर रखे गए पत्थरों पर, एक दिया टिमटिमाता है। दीपक की वह लौ झिलमिला कर रह जाती है। उस मिट्टी के दिये में भरे हुए उस स्नेह को, उस स्नेह से सिक्त उन उज्ज्वल बत्ती को, वासना की वह प्रदीप्त लौ तिल-तिल कर जलाती है। दूर-दूर देशों से अगणित पतंगे उस दिये पर खिंचे चले आते हैं, जल कर भस्म हो जाते हैं, और उनकी भस्म को रमाए वह बत्ती जलती ही जाती है, और मस्तक रूपी उन लौ को धुन-धुन कर वह पतंगे के उस जीवन की सराहना करती है जो एक-बारगी जल कर भस्म हो जाता है। उस जलते हुए चिराग से अधिक द्योतक और कौन सी वस्तु उस समाधि पर रखी जा सकती है?

उन्मत्त आँधी की नाईं नूरजहाँ ने भारतीय रंगमंच पर प्रवेश किया था, किन्तु अब उतरते हुए ज्वार की तरह वह वहाँ से अनजाने लौट गई। जहाँगीर की मृत्यु हुई और उसके साथ ही नूरजहाँ के सार्वजनिक जीवन ने विदा ली, उसकी महती सत्ता भी अनजाने लुप्त हो गई, रूप-कान्ति तथा राजमद की वह मादकता कपूर की नाईं उड़ गई।

नूरजहाँ ने देखा कि राष्ट्र-सागर की तरंगें धीरे-धीरे शान्त हो रही थीं, भारतीय साम्राज्य नाश हो रहा था। क्रूर काल द्वारा अपनी प्रेम-मूर्ति को अपनी सत्ता के दीपक को नष्ट होते देख कर भी नूरजहाँ स्तब्ध थी। एक ही क्षण में नियति ने उसका सब कुछ नाश कर डाला। [illegible]

[illegible]

अपनी पुरानी आदत के ही परिणामस्वरूप नूरजहाँ एक बार पुन उठी और चाहा कि शासन और सत्ता की बागडोर एक बार फिर सभाले, पुन शासन के बिखरे बन्धनो को जकडे तथा अपनी शक्ति को सगृहीत करे, किन्तु कहाँ था उनका वह पुराना उत्साह, उनकी वे पुरानी आकाक्षाएँ? उनके जीवन पर निराशा का सम्पूर्ण कुहरा छा रहा था। उनकी आशाओ का सूर्य अस्त हो चुका था। शाहजहाँ के भीषण झोको को न सह कर नूरजहाँ गिर पडी। अर्जुन की ही तरह उसने भी अपने पुराने सस्मरणो के आधार पर पुन उठने का, एक बार फिर अपनी सत्ता प्रदर्शित करने का प्रयास किया, किन्तु उनकी सत्ता का वह स्थायी आधार कहाँ था? उनके जीवनरथ का वह सारथी ही अब नही रहा जो उसे सफलता के मार्ग पर ले जा सके।

नूरजहाँ इस लोक में आई थी या तो शासन करने या विस्मृति के गम्भीर गह्वर में स्वय को विलुप्त करने। वह ससार के साथ खिलवाड करने आई थी, स्वय ससार के खिलवाड की वस्तु न थी। मानवीय भावो के सागर मे निरन्तर उठने वाली तरगो को रौंद कर उन पर शासन करना, या उन तरगो को चीर कर उस अथाह सागर मे सर्वदा के लिए डूब जाना ही उनका उद्देश्य था। उन निर्बल तरगो द्वारा इधर-उधर पटकी जाना उसे अभीष्ट न था, उनके साथ वे तरगे मनचाहा खिलवाड करें यह एक असम्भव बात थी।

अपने प्रियतम की मृत्यु के बाद ही नूरजहाँ ने अपने सासारिक जीवन से विदा ले ली। अपने पद से पतित भग्न सुन्दर मूर्ति के समान ही नूरजहाँ भारतीय रगमच पर अस्त-व्यस्त पडी थी किन्तु नहीं ससार अधिक काल तक यह दृश्य नहीं देख सका उस पर विस्मृति की यवनिका गिर रही थी। ससार ने उसे भुला दिया, नूरजहाँ के अन्तिम दिनो की मनुष्य को कोई भी चिन्ता न रही।

उँचाई से खड्ड मे गिरने वाले जलप्रपात को देखने के लिए सैकडो कोसो की दूरी से मनुष्य चले आते है। वहाँ न जाने कहा से जल आता है और न जाने कहा चला जाता है। उस गिरती हुई धारा म उस पतनोन्मुख प्रवाह मे कौन सा आकर्षण है? उन उठे हुए कगारो पर टकरा कर उस जलधारा का छितरा जाना, खण्ड-खण्ड होकर फुहारो के स्वरूप मे यत्र-तत्र बिखर जाना, हवा मे मिल

इस लोक में आकर कौन अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण कर सका है? किसने चिर संयोग का सुख पाया है? कुछ ही घड़ियों का, कुछ ही दिनों का, कुछ ही वर्षों या युगों का संयोग — और तब यही संसार की जीवन-कहानी, अन्ततोगत्वा समाप्त हो जाती है। वियोग, वियोग, चिर वियोग और उस पर गरम गरम आँसू, बस ये ही शेष रह जाते हैं। और हा! अन्तर के भावों का ज्वार उठता है, तूफान उठता है, आँसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ता है, सनसनाती हुई उसाँस निकली पड़ती है, और अन्त में रह जाती है स्मृति रूपी दीपक की वह श्यामल धूम-रेखा, जो जल जल कर तमसाच्छन्नता को अधिकाधिक अन्धकार पूर्ण बनाती है, और वे आँसू, जिन्हें उस निराशामय शान्त निस्तब्ध वातावरण में कोई अनजाने टपका देता है।

और उन तीन कब्रों पर आज भी आंसू छलकते हैं। रात्रि के समय आज भी जब सर सर करती हुई सिहराने वाली ठंडी हवा चलती है, जब उन विगत-राज्यश्री वाली कब्रों पर छोटे छोटे मिट्टी के दिये टिमटिमाते हैं, और जब उनकी छोटी सी उज्ज्वलता भी झिलमिला कर रह जाती है, तब काली चादर ओढ़े उस असीम अन्धकार में से न जाने कौन आता है, रात भर उन कब्रों पर रोता है और अरुणोदय से पहिले ही अपनी चादर समेटे चुपचाप चला जाता है। और प्रभात के समय पूर्व की ओर जब, रात भर रोते रोते लाल हुई एक आँख देख पड़ती है, तब उन कब्रों पर दिखाई देते हैं यत्र-तत्र ढलके हुए अश्रुकण। ये ही अश्रुकण आज भी उन तड़पते हुए, प्रेम के प्यासे मनुष्यों के धधकते हुए, भग्न हृदयों की अग्नि को शान्त बनाए रखते हैं।

उजड़ा स्वर्ग

फाड फाड कर देखता था, उनकी मस्ती के महत्भाग को भी पाने के लिए बालक की तरह मचलता था, रोता था, चिल्लाता था परन्तु वे पत्थर पत्थर ही तो थे, फिर उन पर यौवन का उन्माद, अपनी शान मे ही ऐंठे जाते थे वे, अपने मतवालेपन मे ही झूमते थे, अपने ममत्व का अनुभव कर इतराते थे। गले से लगे हुए अपने प्रेमी पुष्पो की ओर एक नजर डालने को भी जो जरा न झुके, संसार, दुखपूर्ण मृत्युमय ससार की भला वे क्यो परवाह करने लगे ?

पत्थर, पत्थर अरे ! उस भौतिक स्वर्ग के पत्थरो तक में यौवन छलक रहा था, उन तक मे इतनी मस्ती थी, तब वह स्वर्ग और उनके वे निवासी, उनको भी मस्त कर देने वाली, उन्मत्त बना देने वाली मदिरा आठो पहर मस्ती मे झूमने वाले स्वर्ग-निवासियो के उन स्वर्गीय शासको को भी मदोन्मत्त कर सकने वाली मदिरा, उसका खयाल मात्र ही मस्त कर देने वाला है, तब उसकी एक घूंट, एक मदभरा प्याला, ।

प्याला, प्याला, वह मदभरा प्याला, उस स्वर्ग मे छलक रहा था, उसकी लाली में पत्थर तक सिर से पाँव तक रग रहे थे, ससार खडा देखता था, तरसता था , परन्तु एक दिन उस स्वर्ग का निर्माता तक इसी मस्ती की ओर प्यासी दृष्टि से देखता था, उसका आह्वान करने को आँखे बिछा रहा था, स्वर्गीय उन्माद की उस मदमाती मदिरा की थोडी सी भी उन उन्मत्तकारी बूंदो को बटोरने के लिए नयनो के दो दो प्याले सरका कर एकटक ताकता था। तब जहान का शाह मादकता की भीख माँगने निकला था। उसके प्रेम पर पत्थर पड चुके थे, उसका दिल मिट्टी मे मिल चुका था, उसकी प्रियतमा का वह अस्थिपजर सुन्दर अद्वितीय ताज पहने बीभत्स अट्टहास करता था। प्रेम-मदिरा ढुलक चुकी थी और शाहजहाँ रिक्त नेत्रो से ससार को देख रहा था। प्रेम-प्रतिमा भग्न हो गई थी, हृदयासन खाली पडा था, और पावो तले भारतीय साम्राज्य फैला हुआ था, कोहनूर-जडित ताज पैरो मे पडा सिर पर रखे जाने की बाट देख रहा था, राज्यश्री उसके सम्मुख नृत्य कर रही थी, अपनी भावभगी द्वारा उसे ही नही ससार को भी लुभाने का भरसक प्रयत्न कर रही थी, तथा उनके हृदयो को अपने अचल मे समेटने के लिए अनन्त सौन्दर्य बिखेर रही थी।

उसके उस साम्राज्य के यौवन का उन्माद भी आ कुछ ढलने लगा था, नूरजहाँ भारतीय इतिहास में [illegible] थी। अपनी अन्तिम प्रेयसी मुमताज को खोकर साम्राज्य ने उसकी आगरे अब ताज की अमर सुन्दरता में देखी, परन्तु वह भी [illegible] नहीं न थी। बढ़े हुए साम्राज्य को प्रौढ़ता में भी नवीन प्रेयसी की इच्छा हुई, आगरा की सकुचित सीमायें साम्राज्य के बढ़ते हुए यौवनपूर्ण हृदय को समाविष्ट करने के लिए पर्याप्त प्रतीत न हुईं। साम्राज्य का प्रेमसागर शान्त हो गया था, किन्तु अब भी अथाह मनोरथ उस वक्षस्थल में हिलोरें ले रहा था। प्रशान्त महासागर में तरङ्गें यदा-कदा ही उठती हैं, परन्तु उस चाँद से मुखड़े को देख कर वह भी खिंच जाता है, अनजाने उमड़ पड़ता है, उस चाँद का वह आकर्षण वह साधारण सागर भी उसके प्रभाव से नहीं बच सकता है, तब उस प्रेमसागर का न खिंचना संसार में विरले ही उस आकर्षण का सफलतापूर्वक सामना कर सके हैं।

साम्राज्य नवीन प्रेयसी के लिए लालायित हो उठा। सम्राट् विधुर हो ही गया था, साम्राज्य ने अपनी प्रथम प्रेयसी आगरा नगरी को अपने हृदय से निकाल बाहर किया, और उन दोनों को रिझाने के लिए राज्यश्री ने नव-वधू की योजना की। अनन्तयौवना ने बहुभर्तृका को चुना। इस पाचाली ने भी सम्राट् और साम्राज्य दोनों को साथ ही पति के स्वरूप में स्वीकार किया। और इस पाचाली के लिए भी उसी कुरुक्षेत्र में पुन महाभारत हुआ, उसके पति को भी बारह वर्ष का वनवास हुआ, उसे देश-देश घूमना पड़ा, और उसके पुत्र नहीं! नहीं! यह पहिले भी नहीं हुआ, आगे भी न होगा पाचाली के भाग्य में पुत्र-पौत्र का सुख न लिखा था, न लिखा है।

न जाने कितने साम्राज्यों की प्रेयसी उजाड़ विधवा नगरी पुन सधवा हुई। अपनी माग में फिर सिन्दूर भरने के लिए उसने राज्यश्री से सौदा किया, अपने प्रेमी के स्थायित्व को देकर उसने अनन्त यौवन प्राप्त किया। और अब नवीन आशाओं के उस सुनहले वातावरण में दिल्ली का चिर यौवन प्रस्फुटित हुआ। दिल्ली ने पुन रग बदला नया चोला धारण किया, वैधव्य के उन फटे चिथड़ो को दूर फेंक कर उसने उन्मत्त कर देने वाली लाली में स्वय को

... इतना गहरा रंग चढ़ा था कि उसमें कोई दूसरी विभिन्नता नहीं देख पड़ती थी। स्वर्ग में और उतार-चढ़ाव...जहाँ समानता हो वहीं निरन्तर सुख, चिरस्थायी आनन्द, अक्षय विलास घर कर सकते हैं। स्थिरता, समानता और प्रशान्त गम्भीरता ही स्वर्ग की विशेषताएँ होती हैं। स्वर्ग का सुख प्रौढ़ व्यक्तियों के भावों की तरह समान प्रशान्त महासागर के वक्षःस्थल का सा समतल, और उसी के समान गम्भीर और अगाध भी होता है। कदा-कदा उठने वाली छोटी छोटी तरङ्गें ही उसके वक्षःस्थल पर यत्किंचित् उभार पैदा करती हैं, उन्हीं से उसमें सौंदर्य आता है और उन्हीं नन्ही तरङ्गों पर नृत्य करती है वह यौवन-सुन्दरी। यौवन-मदिरा से रंगे हुए उस प्रेम-महोदधि में उठी हुई घनीभूत भावों की लाल लाल तरङ्गों पर ही स्थिर हैं वे श्वेत प्रासाद, स्वर्गलोक के वे सुन्दर भवन, स्वप्न-संसार की वे स्फटिक वस्तुएँ, भावलोक की घनीभूत भावनाओं के वे भौतिक स्वरूप।

वासना के प्रवाह में ही उठती हैं वे छोटी छोटी आनन्दप्रदायक [illegible] बूँदें, उस कालकूट विष में से निकलने वाले रसामृत की वे रसभरी बूँदें, जो अपनी सुन्दरता तथा माधुर्य से उस प्रवाह की कलुषिता को धो देती हैं उसकी कालिमा को भी अधिकाधिक सौन्दर्य प्रदान करती हैं और अपने माधुर्य से उस मदमाती लाल लाल मदिरा तक में मधुरता भर देती हैं। [illegible] में पाई जाने वाली अमरत्व की भावना ही मनुष्य के जीवन को सौन्दर्य तथा माधुर्य से पूर्ण बनाती है। यह भौतिक [illegible] एक ही भावना एक ही विश्व-प्रवाह [illegible] है। और [illegible] हैं [illegible] है।

[illegible]

[illegible] "पृथ्वी पर यदि स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।"

[२]

और उस स्वर्ग में जाने की राह थी, उसके भी दरवाजे थे, और उस राह को सुमधुर ध्वनि पूर्ण निर्झर संगीत द्वारा गुंजित करके, न जाने कितनों को वह स्वर्ग अनजाने अपने अन्तरिक्ष में भटका कर ले जाता था। उस स्वर्ग की वह राह! विलासिता बिखरी थी उस राह में, मादकता की लाली वहाँ सर्वत्र फैली हुई थी, और निर्झर संगीत दुःख की भावना नष्ट कर रखे देता था। दुःख, दुःख, उसे तो यौवन के डंके की चोट, मुर्दे की खाल की ध्वनि ही निकाल बाहर करने को पर्याप्त थी। बाँस की वे बाँसुरियाँ—अपना दिल तोड़ तोड़ कर, अपने वक्षस्थल को छिदवा कर भी सुख का अनुभव करती थीं। उन मदमस्त मतवालों के अधरों का चुम्बन करने को लालायित बाँस के उन टुकड़ों की आहों में भी सुमधुर सुर-संगीत ही निकलता था। मुर्दे भी उस स्वर्ग में पहुँच कर भूल गए अपनी मृत्यु-पीड़ा उल्लास के मारे फूल कर ढोल हो गए, और उनके भी रोम रोम में एक ही आवाज़ आती थी— यहीं है! यहीं है! यहीं है!

यमुना ने अपना दिल चीर कर इस स्वर्ग को सींचा, उस कृष्णवर्णा ने अपने हार्दिक भावों तथा शुद्ध प्रेम का मीठा चमचमाता जीवन उस स्वर्ग में बहाया।

उस भौतिक स्वर्ग की यह आकाश-गंगा, उस स्वर्ग को छोड़ कर उसे भी गौरव का अनुभव हुआ। उसका असीम प्रवाह उसका नित-नया जीवन उस स्वर्ग में सीमित हो कर रह गया, उस स्वर्ग के देवी-देवताओं के चरण छूकर वह भी पुराना हो जाता था। स्वर्ग में एक बार बीता हुआ जीवन क्योंकर लौट सकता था, स्वर्ग में पुरातनता नहीं, नहीं, स्वर्ग में होती हुई वह गंगा पुन लौटती थी इस भूतल पर और उस महान् पार्थिव गंगा को, दूसरे स्वर्ग से उतरी हुई उस भागीरथी को, इस भौतिक स्वर्ग का हाल सुनाने के लिए अत्यधिक वेग के साथ दौड़ पड़ती थी।

उस स्वर्गगंगा में, उस नहर-इ-बहिश्त में, खेल करती थीं उस स्वर्ग-लोक की अत्यनुपम सुन्दरियाँ। उन श्वेत पत्थरों पर अपनी सुगन्धि फैलाता हुआ वह जल अठखेलियाँ करता, कलकल ध्वनि में चिर संगीत सुनाता चला जाता था, और वे अप्सराएँ अपने श्वेतांगों पर रंगबिरंगे वस्त्र लपेटे, नूपुर पहने, अपने ही ध्यान में मस्त झुनझुन की आवाज करती हुई, जल-क्रीडा करती थीं। .. और जब वह हम्माम बसता था, स्वर्ग-निवासी जब उस स्वर्गगंगा में नहाने के लिए आते थे, और अनेकानेक प्रकार के स्नेह से पूर्ण चिराग उस हम्माम को उज्ज्वलित करते थे, रंगबिरंगे सुगन्धित जलों के फव्वारे जब छूटते थे, और उस मस्ताने सुगन्धिपूर्ण वातावरण में सुमधुर संगीत की तान पर जब उस हम्माम में जल-क्रीडा होती थी तब वहाँ उस स्वर्ग में सौन्दर्य बिखर पड़ता था, सुख छलकता था, उल्लास की बाढ़ आ जाती थी, मस्ती का छत्र शासन होता था और [illegible], नहीं, नहीं, स्वर्ग के उस अद्भुत [illegible] इस पार्थिव लोक के निवासियों का उस स्वर्गीय छटा [illegible] असम्भव बात है। स्वर्ग की वह मस्ती [illegible] उस हम्माम [illegible] कौन मस्त नहीं हुआ [illegible] फव्वारा [illegible] पर वह [illegible] हुआ [illegible] उस सुगन्धित [illegible] और उनका [illegible] सहस्र [illegible] हुए [illegible] दिवा में [illegible] हुआ

वाले उन दादुरो की टर्-टर् ही सुननी पडती थी,   और वह समा एक-दो मास ही नही, निरन्तर बरसो तक, युगो तक   । स्वर्ग के वे उपभोक्ता, उस लोक के वे देवता, और उस स्वर्ग के सावन और भादो   . उस स्वर्ग के सावन के अन्धे, उन्मत्त मदमस्त अन्धे, जिनका अन्तरग भी मादक मद मे से होकर गुजरने वाले प्रकाश से ही आलोकित होता था   जहाँ जाकर पत्थर तक उस अमिट लाली मे रग गए, तब मनुष्य   ।

× × ×

[२]

परन्तु स्वर्ग ! स्वर्ग का सुख ! दुख के विना सुख   नही हो सकती इसकी पूर्ण अनुभूति ! इस लोक मे, पृथ्वी पर भी स्वर्ग से दूर नरक की भी सृष्टि हुई और तभी स्वर्ग का महत्व बढा। नरक-निवासियो का करुण क्रन्दन सुन कर ही स्वर्गवासी अपने स्वर्गीय चिर सगीत की मधुरता को समझ सके। दुख के विना सुख, समस्त व्यक्तियो की अनुभूति मे समानता,   नही ! नही ! तब तो स्वर्ग नरक से भी अधिक दुखपूर्ण हो जायगा। मानवीय आकाक्षाओ की पूर्ति महत्ता के विना नही हो सकती। तद्देशीय व्यक्तियो मे समानता होने पर भी स्वर्ग का महत्त्व तभी हो सकता है, जब उसके साथ ही नरक भी हो। स्वर्ग के निवासी उसको देखे तथा स्वर्ग की ओर नरकवासियो द्वारा डाली जाने वाली तरस-भरी दृष्टि की प्यास को समझ सके।

उस दूसरी दुनियाँ के समान ही इस लोक मे भी स्वर्ग के साथ ही नरक की भी—नही, नही स्वर्ग से भी पहिले नरक की सृष्टि हुई थी। स्वर्ग को न अपना सकने वालो के, या स्वर्ग से निर्वासित ही नही इस भौतिक लोक मे भी स्थान न पा सकने वाले व्यक्तियो के भाग्य मे नरक-वास ही लिखा था। अपनी आशाओ, अपने दिल के अरमानो   नही, नही भाग्य के भाग्य तथा उसके अनिश्चित भविष्य को भी अपने साथ लपेट, हृदय मे छिपाए, जहान के सारे का प्यारा, दास तरस तरस कर मर रहा था और ससार ने उस उकताई आँखो से देखा। ससार भर के आग भी दास की भाग्य-रेखा को मेट न सके।

वह मुर्दा होकर अपने वृद्ध विवश पिता के सम्मुख आया; और एक बार फिर संसार ने शाहजहाँ की बेबसी देखी, उस बार वह भाग्य के दरवाज़े पर सिर फोड़ कर रह गया, इस बार स्वर्ग के दरवाज़े पर रो रो कर भी उस स्वर्ग के अधिष्ठाता तक न पहुँच सका। परन्तु रक्त की लाली को स्वर्ग की लाली न सह सकी, और दारा का कटा हुआ सिर नरक मे भेज दिया गया। उस स्वर्ग का वह नरक, पतित आत्माओ का वह निवास, विफल व्यक्तियो का वह अन्तिम एकमात्र आश्रय, स्वर्ग से कोसो दूर, उस पुश्चली दिल्ली से भी अपना दामन बचाए, उन बेचारो को अपने अंचल मे समेट रहा था।

भारत के प्रारम्भिक मुगल सम्राट् हुमायूँ की वह कब्र, उसका वह विशाल मकबरा, अन्तिम मुगलो का वह निवासस्थान ही उस स्वर्ग का नरक था। उसकी निर्माता थी, उसी अभागे सम्राट् की विधवा विरही प्रेयसी। उस शासक ने जब जब मस्ती और सफलता की जादू भरी प्याली को मुँह से लगाया, जब जब उसने मादकता का आह्वान् किया, तब तब वह एकाएक अदृश्य हो गई,. और वह सम्राट्. .हक्का बक्का सा होकर इधर-उधर ताकता ही रह गया, और उसे जब कुछ होश हुआ तो देखा कि वह विफलता तथा विपत्तियो का हलाहल पी रहा था। जीवन भर दुर्भाग्य का मारा वह ठोकरे खाता फिरा, और एक दिन ठोकर खाकर जब वह दूसरे लोक मे लुढ़क पड़ा तब तो उसका मक़बरा मुगलो के दुर्भाग्य का आगार बन गया उनके लिए साक्षात् नरक हो गया।

वह विधवा थी, और उसने अपने दिल के दर्द को उँडेल दिया उस मक-बरे के स्वरूप मे उसने अपने दर्द और दुख को ही नही किन्तु अपने प्रियतम के दुर्भाग्य को भी घनीभूत कर दिया। जहाँ [illegible] के दूसरे [illegible] आशावाद तथा सुखमयी भावना प्रदर्शित करते हैं किन्तु [illegible] उन टूटे हुए दिलो के रुधिर से सने हुए टुकड़ो का एक [illegible] है। [illegible] के आँसुओ से उस विधवा ने उस मकबरे का अभिसिंचन किया था, [illegible] भी उस मकबरे मे सुन पड़ती है [illegible] उसकी दर्द भरी [illegible]।

और दुखी को देख कर [illegible] है। [illegible]

वह एक भीषण तीक्ष्ण व्यंग मात्र था। सुख, इस नाम की वस्तु से तो वे पूर्णतया अनभिज्ञ ही थे, और मस्ती . .वह तो एक स्वर्गीय वस्तु थी, दिलदारो की ही एकमात्र सम्पत्ति थी। नरक तो उनके लिए खिलवाड मात्र था, उनका दुख, उनकी तीक्ष्णता, वदना, उनके जीवन के प्रारम्भिक दुखो की भी समता करने की क्षमता उस नरक में न थी। और क्रन्दन. . .जहाँ अग्नि हो वही लपटें धांय धांय करती है, जहाँ आग हो वही पानी भी होता है, जहाँ दिल की धड़कन हो वही से चीख भी निकलती है, जहाँ आशा हो वहाँ ही निराशा का भी अनुभव होता है। यहाँ तो मूक निश्वास भी तो नही निकलने पाती थी कि दुखियो के एकमात्र आसरे उस नरक को भी कहीं वह भस्म न कर दे।

वे दिल को खो बैठे थे, स्वप्नलोक को उन्होंने त्याग दिया था, परन्तु अपनी भयकर दाहक निश्वास के स्पर्श-मात्र से निर्जीव पत्थर तक की क्या दशा होगी इस विचार ने ही उस हृदय-विहीन जहानआरा को विचलित कर दिया, वह सिहर उठी और उसकी अन्तिम श्वासो मे आवाज आई —"नहीं ! नहीं ! मेरी क़ब्र पर पत्थर न रखना; मेरी इस कठोर छाती पर न जाने कितने दिल टूट चुके हैं, तपतपाए आँसुओ की न जाने कितनी धाराएँ बह चुकी हैं, उसी पर पत्थर रखना . .यह न करना। उसके भार का मुझे कोई खयाल नहीं है, उसके अस्तित्व का मुझे पता भी न लगेगा परन्तु .तब मेरी इस उत्तप्त छाती पर रह कर उस बेचारे पत्थर की क्या दशा होगी ? . उन निश्वासो मे उसे झुलसना होगा इस दहकते हुए वक्षस्थल का स्पर्श ।

आज भी उन हृदय-विहीन मन-चलो की निश्वासें उनकी क़ब्रो पर छाई हुई रहती हैं और उन क़ब्रो पर यत्र-तत्र उगी हुई घास उन भग्न हृदयो के घावो को हरा रखती है। अपने घावो को दिखा दिखा कर वे कंगाल संसार को चेतावनी देते हैं उन्हें खोल खोल कर वे दिखाते हैं कि इस जीवन मे सुख नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। संसार को ज़रा भी चोट से छटपटाहट होने लगती है और जिसे संसार दुख कहता है जिसके ख्याल मात्र से वह रो पडता है, वह भी तो खिलवाड ही है। जो दुख कहीं सचमुच आ पहुँचता

है तो वह मृत्यु के बाद भी साथ नहीं छोड़ता। उन कामनाओं के दुःख से ही निराश-वेदना का उद्भव होता है, और उन्हीं के निराशाओं में संसार की दुःखमयी भावना उद्भूत होती है।

× × ×

[४]

परन्तु बेदिल वाले, दिल से हाथ धोकर भी ससार मे विचरने वाले, कितने है ? दिल वाले, टूटे दिल वाले, उसकी याद कर कर के रोने वाले, दिल का सौदा करने वाले , उनकी गणना दिल तक कौन पहुँच पाया है जो उनकी सख्या निर्धारित कर सके। और उस स्वर्ग मे, दिल का ही तो वहाँ एकच्छत्र शासन था। अनन्त यौवन, चिर सुख तथा मस्ती इन सब का निर्माण करके इन्ही के आधार पर दिल ने उस स्वर्ग की नीव डाली थी। परन्तु साथ ही असन्तोष तथा दु:ख का निर्माण भी तो दिल के ही हाथो हुआ था। स्वर्ग और उसके साथ नरक का सहवास ! विष किसके लिए घातक नही होता, छूत किसे नही लगती ? दिलवालो के स्वर्ग मे नरक का विष फैला। अनन्तयौवना विषकन्या भी होती है। उसका सहवास करके कौन चिरजीवी हुआ है ? सुख को दु:ख के भूत ने सताया। मस्ती और उन्माद को क्षयरूपी राजरोग लगा।

स्वर्ग और उसमे विष, रोग तथा भूतो का प्रवेश ! वह स्वर्ग था, किन्तु था इसी भौतिक लोक का स्वर्ग। जहा गुण तक क्षय हो जाते है वहाँ सुख का अक्षय रहना, पुण्य तक जहाँ क्षीण हो जाते है, वहाँ मादकता का अक्षुण्ण बने रहना असम्भव है। अनन्तयौवना ने अभिसिचन किया था, परन्तु वारागना को अपनाकर कौन सुखी हुआ है ? वह अक्षय सुख, वह तो स्वर्ग मे, दूसरे लोक के उस सच्चे स्वर्ग मे भी तो प्राप्त नही होता, पुण्य तो वहाँ भी क्षय होते है, पाप वहाँ भी साथ नही छोडते और पुनर्जन्म का भूत वहाँ भी जा पहुँचता है, पुण्यात्माओ तक को वह सताता है, तब इस लोक के स्वर्ग मे उनका अभाव यह अनहोनी बात कैसे सम्भव हो सकती थी।

करने की सोची। स्वर्ग के सुख के सामने आने को दुःख का सागर उमड़ पड़ा, उस स्वर्ग के वे अधिष्ठाता उस दुःख-सागर से बचने को इधर-उधर भागते फिरे, अनेकों ने तो दूसरी दुनिया में ही जाकर चैन ली।

और आलम का शाह जब उस दुःखपूर्ण स्वर्ग का अधिष्ठाता बना तो वह स्वर्ग को ढूंढता फिरा, कभी गंगा के प्रवाह में उसके अस्तित्व का आभास उसे देख पड़ा, तो कभी शिरीनी में ही उसे सुख का प्राधान्य जान पड़ा। वह भौतिक स्वर्ग क्षत-विक्षत हो गया था, उसका एक प्रेमी, साम्राज्य, मर चुका था, सदा के लिए विनष्ट हो गया था। और जब उस स्वर्ग का दूसरा प्रेमी स्वर्ग में लौटा तो वह उस स्वर्ग की सुन्दरता को खोजते खोजते उस संसार के सौन्दर्य को भी खो बैठा। स्वर्ग का सुख पाने की इच्छा करने वाले को संसार का सुख भी न मिला। आलम का शाह पालम तक शासन करता था, स्वर्ग का अधिष्ठाता, उसका एकमात्र अधिकारी उस स्वर्ग को एक नजर भी न देख पाता था और जब उस लोक में देखने योग्य कुछ न रहा तब वह प्रज्ञाचक्षु हो गया। परन्तु वारांगनाओं को दिव्य दृष्टि से क्या काम? उन्होंने अन्धों का कब साथ दिया है? अन्धे कब तक अन्धों पर शासन कर सके हैं? दुर्भाग्य रूपी दुर्दिन के उस अंधियारे में नितान्त अन्धेपन की उस अनन्त रात्रि में, रात्रि का राजा उस अंधी को ले उड़ा, और वह पहुँची वहाँ जहाँ समुद्र बीच शेषशायी सुखपूर्ण विश्राम कर रहे थे।

\ \ \

"तुम्हारे पांवों में बेडियां पडी हैं और दिल पर ताले लगे हुए हैं, जरा सम्हल कर रहो!

"आंखें बन्द हैं, पांव कीचड में धँसे हुए हैं, जरा जागो, उठो!

"पश्चिम की ओर जा रहे हो, परन्तु तुम्हारा मुख तो पूरब ही की ओर है, पीछे क्यों ताक रहे हो, जरा अपने उद्देश्य की ओर तो दृष्टि डालो।"

परन्तु उन बेडियों से कौन छूटा है? वृद्धों का यौवन कब उन्हें पार लगा सका है? अशक्तों की सत्ता पर तो स्त्रियाँ भी हँसती हैं! दिल को बिखेर कर उसे खो कर ताले लगाना, उनके पास अब रहा क्या है जो सम्हले?

दिल टूट गया। स्वर्ग से, सुरलोक में रह कर भी कल्पनालोक में विचरना स्वर्ग से देखा न गया। स्वर्ग में भी ईर्ष्या की अग्नि धधक उठी, स्वर्ग का जो कुछ भी सुख बचा था वह भी जल कर भस्म हो गया, उस 'उजड़े दयार का वह गुलेगुलज़ार' उस भीषण दावानल में जल भुन कर खाक हो गया; और दुर्भाग्य की उस आँधी ने उन भस्मावशेषों को यत्र-तत्र बिखरे दिया। नहीं! नहीं! उस दुर्भाग्य से उस स्वर्ग की बेवनी का वह मज़ार तक न देखा गया, उसे भी खण्ड-खण्ड कर उलट दिया और वह निर्जीव मृतप्राय पिण्ड लुढ़कता लुढ़कता उस स्वर्ग से नरक में जा पड़ा।

× × ×

[५]

स्वर्ग में उस सुरलोक में बेवनी का मज़ार, वह उजड़ा स्वर्ग भी काँप उठा अपने उस शूल से। निरन्तर रक्त के आँसू बहाने वाले उस नासूर को निकाल बाहर करने की उस स्वर्ग ने सोची। परन्तु उफ़! वह नासूर स्वर्ग के दिल में ही था, उसको निकाल बाहर करने में स्वर्ग ने अपने हृदय को फेंक दिया। और अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध स्वर्ग जब दर्द के मारे तड़प उठा, तब भूडोल हुआ, अन्धड़ उठा, प्रलय का दृश्य उपस्थित हो पड़ा। पुरानी सत्ता का भवन ढह गया, ममता-मयी पृथ्वी फट गई और सम्पूर्ण उसके अतल गर्भ में सर्वदा के लिए विलीन हो गया। सर्वनाश का भीषण ताण्डव हुआ, रुधिर की होली खेली गई, नाश की गड़गड़ाहट सुन पड़ी, तलवार का संहार हुआ, सहस्रों व्यक्ति बेघरबार के हो गए, दर दर के भिखारी बने। यमुना के प्रवाह का मार्ग भी बदला, उस स्वर्ग को, स्वर्ग के उस रूप को, छोड़ कर वह भी चल दी, और अपने इस वियोग पर वह भी फूट फूट कर रोई। किन्तु उसके उन आँसुओं को, स्वर्ग के प्रति उसके इस स्नेह को स्वर्ग के दुर्भाग्य ने सुखा दिया; उस [illegible] ने भी स्वर्ग की धमनियों में बहना छोड़ दिया। और अपनी उस प्रिय सखी, उस स्वर्गश्री की दशा देख कर यमुना का वक्ष-[illegible] भग्न हो गया, खण्ड खण्ड होकर आज भी उसी सूने कगार के पास पड़े

कई वार तो स्वय भी कहने लगता था "ई जानिव ने फरमाया है", अपनी गजल पढता था, दरवार के चारो कोनो मे "आदाव !" "आदाव !" की आवाजे गूँजने लगती थी। अव उस दरवार मे चर्चा होती थी उस दूसरे लोक मे होने वाली अनेकानेक घटनाओ की, वहाँ मयखाने का उजडना, साकी की गैर-हाजरी, जाम का ढुलक जाना, यारो का विछड जाना, रकीवो की ज्यादती, माशूको की कठोरता, आशिको की वेवसी, उनके मरने के वाद उनकी मजार पर आकर माशूको का रोना और माशूको की गली मे आशिको का निकाला जाना । और दिल्लीश्वर ने एक वार फिर जगदीश्वर की समता ही न की परन्तु इस वार तो उसे भी हरा दिया, दिल्लीश्वर की इस नवीन वादशाहत में कोई भी वन्धन न थे और न यहाँ जगदीश्वर की भीषण यातना का डर ही उन्हे सताता था।

परन्तु.. उस उजडते हुए भग्नप्राय स्वर्ग की दर्दनाक आवाज पहुँची उस कल्पनालोक मे भी। सदेह स्वर्ग मे, कल्पनालोक मे, पहुँच कर भी कौन अपने टूटे दिल को भुला सका है। वहाँ भी वही दर्द उठता था, कसक का अनुभव होता था, और जव कभी वह टूटा दिल थक कर सो जाता था, तभी कुछ उल्लास आता था, परन्तु वह क्षणिक उल्लास और उसके वाद फिर वही शोक उस मदमाते स्वर्ग की इससे अधिक व्यगपूर्ण तीक्ष्ण आलोचना नही हो सकती थी। और तभी इस स्वर्ग के पीडित शासक, अपने टूटे दिलो के कारण ही, उस दूसरे लोक मे शासन न कर सके। वहादुर 'जफर' तो उस कल्पनालोक मे भी रोता था, कफनी पहन कर ही वह वहाँ पहुँचा था। वहाँ भी वही वेवसी थी, वही रोना था। वहाँ भी रुधिर के आसुओ ने कल्पना की उज्ज्वलता को रग दिया, उन वहाए गए आँसुओ मे सारी मस्ती वह गई थी, उन आँसुओ की उत्तप्तता से वह सुकोमल भावना मुरझा कर मृतप्राय हो गई थी। हाँ ! 'फलक ने लूट के वीरान कर दिया था उस उजडे दयार' की दशा को देख कर कभी कभी ही जव कवि का दिल टुक रोने रोने सा जाता था, तव कही एकाध सेहरा लिखा जाता था और तभी इस कल्पनालोक के दो महारथियो मे चोचे हो जाया करती थी।

नही ! नही ! यह सुख भी स्वर्ग को देखना नसीव न हुआ। उसका

शाहू के रूप मे छिपा बैठा है। स्वर्ग भी नष्ट भ्रष्ट हो गया, उसकी भाग्य-लक्ष्मी यहीं उन्हीं खण्डहरों मे रो कर मर गई। और उस प्रेयसी के वे प्रेमी शहंशाह के इस भीषण भाग्य को देख कर कांप उठे और अपने स्वर्ग ताज को डगमगाते देख, उसके नाश की परछाइयाँ आई जान के भाग खड़े हुए।

उफ ! उस स्वर्ग की वह अन्तिम रात ! जब स्वर्गीय जीवन अन्तिम साँसें ले रहा था। प्रलय का प्रवाह स्वर्ग के दरवाजे पर टकरा टकरा कर लौटता था और सहस्रों गुने वेग के साथ पुन आक्रमण करता था। सांय सांय करती हुई ठण्डी हवा बह रही थी, न जाने कितनो के भाग्य-सितारे टूट टूट कर गिर रहे थे। दुर्भाग्य के उस दुर्दिन की अंधेरी अमावस्या की रात मे उस स्वर्ग में घूमती थी उस स्वर्ग के निर्माताओ की, उसके उन महान् अधिष्ठाताओ की प्रेतात्माएँ, कोने कोने मे उस पुराने स्वर्ग को खोजती थीं, उसको इस नए रूप-रग मे न पहिचान कर खोई हुई सी हो जाती थी, पागल की तरह दौडती थीं और अपने उस भयोत्पादक स्वरूप को लेकर फिर अधकार मे विलीन हो जाती थीं। सुख और विलासिता के मुर्दों के मास को दुख तथा विवशता रूपी गीदड फाड-फाड कर, नोच-नोच कर खा रहे थे, उनकी सूखी हड्डियो को चबा रहे थे। राजसत्ता की कब्र को खोद-खोद कर उसमें तह तक पहुँच कर उसके निर्जीव ककाल को बाहर खीच निकालने का प्रयत्न किया जा रहा था। उस भीषण सन्ध्या के समय राज्यश्री ने मृत्युरूपी अपनी उस भयकर सौत को स्वर्ग मे घुसते देखा, हृदय को कँपा देने वाले अपने ककालरूपी स्वरूप को जीवन्मृत की काली साडी मे लपेटे वह मुगलो को रिझाने, उनसे प्रेम-प्रणय करने आई थी। तब तो राज्यश्री अपने प्रेमी का भविष्य सोच कर धक् से रह गई, बेहोश होकर चिर निद्रा मे सो गई। और मुगलो की राज्यश्री की उस करुणापूर्ण मृत्यु पर दो आंसू बहाने वाला भी कोई न मिला।

आह ! उस भीषण रात को दूर दूर तक सुन पडता था उस विलासिता-पूर्ण स्वर्ग मे बच्चो का चीखना, विधवाओ का विलाप, सधवाओ का सिसकना, बुड्ढो का बिलखना और युवक-युवतियो का उसासे भरना। परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग मे मुगलो का अन्तिम चिराग जलता रहा, बेबसी के उस मजार को वह आलोकित करता रहा, किन्तु आज उस मजार पर न तो फूल थे, न

गया, वह दिया टिमटिमाता रह गया, शान्त निस्तब्धता छा गई और वहीं पास ही पड़ा था मुग़ल वंश का वह निर्जीव अस्थिपंजर, उनकी आकांक्षाओं के वे अवशेष, उनकी साधनाओ की वह समाधि. .।

सूरज निकला। . अन्धड बढ रहा था, दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्यरूपी बादलो से छा रहा था, . . .वह दिया, उस स्वर्गीय जीवन की अन्तिम आशाओ का वह चिराग—स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ झिलमिला कर बुझ गई, और तब उस वंश की आशाओ का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषो का, अकबर और शाहजहाँ के वंशजो की अन्तिम सत्ता का जनाज़ा उस स्वर्ग से निकला। रो रो कर आसमान ने सर्वत्र आँसू के ओसकण बिखेरे थे, इस कठोर-हृदया पृथ्वी को भी आहो के कुहरे मे राह सूझती न थी। परन्तु. . .विपत्तियो का मारा, जीवन-यात्रा का वह थका हुआ पथिक, उस 'उजडे दयार' का वह एकमात्र बुलबुल, सितम पर सितम सह कर भी उसी साहस के साथ मुगलो की सत्ता तथा उनके अस्तित्व के जनाज़े को उठाए, अपने भग्न हृदय को समेटे चला जा रहा था।

स्वर्ग से निकल कर उसने एक बार घूम कर पीछे देखा, अपनी प्रियतमा नगरी के उस मृतप्राय जीवन-विहीन हृदय की ओर उसने एक नजर डाली, और उस स्वर्ग की, मुगलो की उस प्रेयसी की, अपने प्रियतम से अन्तिम बार चार आँखे हुई, वह उस प्यारे की ओर एकटक देखती ही रह गई और दो हिचकी मे उसने दम तोडा। आँखे खुली की खुली रह गई, नेत्र-द्वार के वे पटल आज भी खुले पडे है।

और बहादुर ने अपनी प्रेयसी की इस अतिम घडी को देखा, उसने मुख फेर लिया, जनाजा आगे बढा। धूल बिखर रही थी, आज पैरो में पडी निरन्तर कुचली जाने वाली उस पृथ्वी ने भी स्वर्ग के अधिष्ठाताओ के सिर पर धूल फेकी, और मृत स्वर्ग के उस स्वामी ने बेबसी की नज़र से आसमान को ताका। खून की होली खेली जा चुकी थी, और स्वर्ग के निवासी अपने प्यारो को समेटे, स्वर्ग के उस मृत ककाल को छोड कर भागे चले जा रहे थे। स्वर्ग से निकला हुआ वह अतीव दु खी व्यक्ति, उस स्वर्ग का वह अन्तिम प्रेमी, आश्रय के लिए नरक मे पहुँचा।

घास बढ़ती है, और .आज भी उन्ही घावो को देख कर अनजाने उनके दर्द का अनुभव होता है, आप ही आप दो आँसू टपक पडते है ।

आँसू ढलक रहे थे, उनका प्रवाह उमड रहा था, नरक सिसक सिसक कर रो रहा था, उसासे भर रहा था, निश्वासे लेता था और उन्ही निश्वासो ने उस बेबसी के मजार को नरक मे भी उडा दिया । स्वर्ग के उस अन्तिम उपभोक्ता, मुग़ल वश के उस ज़िन्दे जनाज़े को नरक में भी स्थान न मिला; दु खो का आगार भी उस दुखियारे को अपने अचल मे न समेट सका, उसे आश्रय न दे सका । जलते हुए अगारो को छाती से लगा कर कौन जला नही है ? और उस उजडे स्वर्ग में, उस बिलखते हुए नरक में ..दहकते हुए अगारे चुनने वाले वहाँ न मिले ।

बहादुर नरक मे भी लुट गया। वहाँ उसने अपने टूटे दिल को भी कुचला जाते देखा, उस हृदय की गम्भीर दरारो की खोज होते देखी, और अपने दिल के उन टुकडो को ससार द्वारा ठुकराया जाते देखा । उफ ! वह वहाँ से भी भागा । अब तो अपनी आशा के एकमात्र सहारे को भी अपनी देखती आँखो नष्ट होते देख कर उसे आशा की सूरत तो क्या उसके नाम तक से घृणा हो गई । जहाँ के निवासियो के चेहरो से आशावादिता झलकती है, उसी इस भारत से उसने मुख मोड लिया । उसे अब निराशा का पीलिया हो गया, और तब वह पहुँचा उस देश मे जहाँ सब कुछ पीला ही पीला देख पडता था । नर-नारी भी पीत वर्ण की चादर ही ओढे नही फिरते थे किन्तु स्वय भी उस पीत वर्ण मे ही शराबोर थे । निराशा के उस पुतले ने निराशापूर्ण देश की उस एकान्त अन्धेरी सुनसान रात्रि मे ही अन्तिम साँसे तोडी । निराशा की वह उत्कट घडी नही ! नही ! उस दिन की याद कर, वह दिन देख कर फिर ससार मे विश्वास करना—नही, यह नही हो सकता । मानवीय इच्छाओ की विफलता का वह भीषण अट्टहास ! जफर की वे अन्तिम निश्वासे उफ !

\ \

स्वर्ग उजड गया और दुर्भाग्य के उस अन्धड ने उनके टूटे दिल को न जाने कहाँ फेक दिया । उस चमन का वह बुलबुल रो चीख कर, तडफता कर

"तमन्ना फूट कर रोई थी
जिस पर, यह वह तुरबत है।"

मुगलो की प्रेयसी, अनन्तयौवना राज्यश्री की उस प्यारी पुत्री का अन्त हो गया। इस लोक के उस स्वर्ग की वह आत्मा न जाने कहाँ विलीन हो गई, परन्तु उसका वह मृत शरीर, उन मुगलो की विलास-वासनाओ की वह समाधि, उनकी आकाक्षाओ का वह मज़ार, उस उत्तप्त स्वर्ग का वह ठण्डा अस्थि-पजर, मुगलो के सुख-वैभव और मादकता के वे रूखे-सूखे अवशेष, उनके उन्मत्त प्रेम का वह ककाल अनन्तयौवना ने उन अवशेषो पर कफन डाल दिया और रुधिर के आँसू वहाए, उफ ! उस ककाल पर उन लाल लाल आँसुओ के दाग, उनकी वह लालिमा आज भी देख पडती है।

उस स्वर्ग का वह ककाल अरे ! उसका सुख-स्वप्न लेकर वे सारी राते, वे सारी सुखद घडियाँ, वह मस्ताना जीवन, न जाने कहाँ विलीन हो गए ? और . उनके पथ को आलोकित करने वाली, अपने प्रियतम के पथ में विछने वाली, अपनी तिरछी चितवन द्वारा उन्हे अपनी ओर आकर्पित करने वाली, वे मस्तानी आँखे, वुझ कर भी आज खुली हैं, गड्ढे मे निर्जीव धँसी पडी हैं। और आज भी उस ककाल मे रात और दिन होता है। मर जाने पर भी उस ककाल का चिर यौवन उसको निर्जीव नही होने देता। स्वर्ग की वह चिरसुख-वासना, मिलन की वह अक्षय आस, सुख-स्वप्न की वह मादकता, यौवन की वह तडप, वह मस्ती, आशा की न बुझ सकने वाली वह आग, आज भी ये सब उस ककाल मे अपना रग लाते है। वे लाल पत्थर आज भी आशा की अदृप्ट रूप से जलने वाली उस अग्नि मे धधकते है, और उसी की दहकती हुई आग से वे पत्थर, निर्जीव पत्थर, भी लाल लाल हो रहे है, और हाड-मास की वह राख, हड्डियो का वह ढेर, वे श्वेत पत्थर आँसुओ के पानी से वुझने पर भी आज उनमे गरमी है। और जब सूरज चमकता है और उस ककाल की हड्डी हड्डी को करो से छूकर अपने प्रकाश द्वारा आलोकित करता है, तव वे पत्थर अपने पुराने प्रताप को याद कर तथा सूरज की इस ज्यादती का अनुभव कर तपतपा जाते है, उन्हे अपने गए बीते यौवन की याद आ जाती है, अपना विनष्ट सौन्दर्य तथा अपना अन्तर्हित वैभव उनकी